संस्थापित १८६७ ई.

आर्य मित्र

साप्ताहिक

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का मुख पत्र

आजीवन शुल्क ₹ २,५००
वार्षिक शुल्क ₹ २००
(विदेश ५० डालर वार्षिक) एक प्रति ₹ ५.००

● वर्ष : १२८ ● संयुक्तांक : २७ व २८ ● ०६ एवं १३ जुलाई, २०२३ (गुरुवार) श्रावण कृष्णपक्ष एकादशी सम्वत् २०८० ● दयानन्दाब्द १६६ वेद व मानव सृष्टि सम्वत्:१६६०८५३१२४

श्रावणी पर्व पर विशेष

परमात्मा ही सबका गुरु आचार्य, राजा और न्यायाधीश है, उसी की आज्ञा का पालन करना चाहिये।

–देवेंद्रपाल वर्मा

श्रावण माह का आरंभ हो चुका है। हम आर्यों के लिए इस माह का विशेष महत्व है। साधारण अर्थों में श्रावण का अर्थ सुनने में लिया जाता है लेकिन यहां श्रावण का अर्थ 'श्रुति' अर्थात 'वेद' के सुनने से है। 'श्रुति' अर्थात 'वेद' जो ईश्वर की वाणी है जिसको सृष्टि के आरंभ में आदित्य, अंगिरा, अग्नि, वायु नाम के ऋषियों ने समाधि अवस्था में अपने अंतःकरण में ईश्वर द्वारा सुना। उसके पश्चात गुरु-शिष्य की परंपरा के अनुसार सुनते-सुनाते हम तक ऋषियों ने पहुंचाया। इसी कारण 'वेदों' का दूसरा नाम 'श्रुति' है।

महर्षि दयानंद सरस्वती ने आर्य समाज के नियमों में वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है कहा है यहां केवल धर्म नहीं परम धर्म माना है जो जीवन से भी महत्वपूर्ण है।

आज के भाग दौड़ भरे व्यस्त जीवन में तमाम लोग वेद का अध्ययन या स्वाध्याय नहीं कर पाते। इस कारण श्रावण मास को वेद के विशेष अध्ययन अध्यापन के लिए निश्चित कर दिया। सब मनुष्यों को श्रावण माह में 'श्रुति' अर्थात 'वेद' को पढ़ना पढ़ाना व सुनना सुनाना कर सनातन काल की ऋषि परंपरा को जागृत रखना होगा। इस संबंध में मनु महाराज ने उचित ही कहा है–

स्वाध्याययेनार्चयेतर्षीन् होमैर्देवान्
यथाविधि।
पितृन श्राद्धैश्च् नपृनन्नैर्भूतानि
बलिकर्मणा।।

मनु० ३/८१

अर्थात स्वाध्याय से ऋषियों की, होम से देवों की, श्राद्ध से पितरों की, अन्न से अतिथियों की, बलि कर्म से क्षुद्र जीवो की यथा विधि पूजा करें।

महर्षि का मानना है कि "एक परमपिता परमात्मा ही हम सबका गुरु, आचार्य, राजा और न्यायाधीश है। हम सबको उसी की आज्ञा का पालन (वेदानुकूल) करना चाहिए। उन्होंने ऋग्वेद आदि भाष्य भूमिका के पठन-पाठन विषय में ऋ. १०/७१/५ को इस संबंध में लिखा है–

उतत्वम् सख्ये स्थिरपीतमाहुर्नैनम्
हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु।
अन्धेवा चरति माययैष वाचम्
शुश्रुवाँ अफलामपुष्पाम्।।

अर्थात-सब मनुष्यों को उचित है कि विद्वानों के साथ प्रीति करें। अर्थात जैसे संपूर्ण मनुष्यों के मैत्री करने योग्य मनुष्य को सब लोग सुख देते हैं वैसे ही तू भी जो वेदादि विद्या और विज्ञानयुक्त पुरुष है, उसको अच्छी प्रकार सुख दे, कि जिससे तुझे विद्या रूप लाभ सदा होता रहे। विद्वान नाम उसका है जोकि अर्थ सहित विद्या को पढ़ के वैसा ही आचरण करें, कि जिससे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और परमेश्वर की प्राप्ति यथावत हो सके। इसी को स्थिरपीत कहते हैं। ऐसा जो विद्वान है वह संसार को सुख देने वाला होता है। उसको कोई भी मनुष्य दुःख नहीं दे सकता। क्योंकि जिसके हृदय में विद्या रूप सूर्य प्रकाशित हो रहा है। उसको चोर दुःख नहीं दे सकते और जो कोई अविद्या रूप अर्थात अर्थ और अभिप्राय रहित वाणी को सुनता और कहता है उसको कभी कुछ भी सुख प्राप्त नहीं हो सकता। किंतु शोक रूप शत्रु उसको सब दिन दुख ही देते रहते हैं। क्योंकि विद्याहीन होने से वह शत्रुओं को जीतने में समर्थ नहीं हो सकता।

महर्षि के २००वीं जयंती के अवसर पर प्रदेश के समस्त आर्यों को इस श्रावणी उपक्रम के अवसर पर वेद प्रचार के रूप में ऋषि आज्ञा का पालन करते हुए श्रावणी पर्व को सफलतापूर्वक मनाएं। यही ऋषि के प्रति श्रेष्ठ कृतज्ञता होगी।

वर्तमान समय में कट्टरपंथी व मतांध लोग विशेषकर हमारे युवा वर्ग को बरगला कर निशाना बनाकर उनका धर्म परिवर्तन कर रहे हैं। यहां तक उन्होंने शिक्षण संस्थानों को भी नहीं छोड़ा है, अन्य व्यवसायिक व संस्थाओं की बात ही क्या कहनी। सभी कट्टरपंथियों का मुख्य निशाना हिंदू ही है। पूर्वोत्तर राज्यों में ईसाई, तो भारत के अन्य राज्यों में मुस्लिम मतांध लोग सक्रिय हैं। ऐसे में आर्य समाज की जिम्मेदारी बढ़ जाती है। खासकर युवाओं को वैदिक संस्कृति का ज्ञान देना आवश्यक है। बढ़ते पाखंड व वितण्डावाद के कारण युवा भ्रमित हैं और हिन्दू धर्म को संकीर्ण विचारधारा से जोड़कर उन्हें बरगलाया जाता है। आर्य समाज को ऋषि रचित ग्रंथों का प्रचार प्रसार करने की आवश्यकता है, जागरूक युवा ही इस कट्टरता को रोकने में सक्षम व सबल होंगे। जब उन्हें अपनी संस्कृति व संस्कार का वास्तविक ज्ञान होगा।

वेदामृतम्

प्र ते यक्षि प्र त इर्याम मन्म, भुवो यथा वन्द्यो नो स्वेषु।
धन्वन्निव प्रपा असि त्वमग्न, इयक्षसे पूरवे प्रत्न राजन्।।

ऋ० १०.४.१

हे मेरे अग्नि प्रभु ! तुम राजा हो और मैं रंक हूँ। इस पद पर तुम आज नये-नये अभिषिक्त नहीं हुए हो किंतु सनातन राजा हो। मैं तुम्हें क्या उपहार दूं! मुझ अकिंचन के पास यदि कुछ है भी तो वह तुम्हारा ही दिया हुआ है। तुम्हारी ही वस्तु तुम्हे कैसे दूं ! श्रुतः मैं तो तुम्हें अपने आत्मा का ही दान कर रहा हूँ। इस आत्मार्पण के अवसर पर मुहुर्मुहुः तुम्हारे प्रति वैदिक स्तोत्रों का गान कर रहा हूँ, तुम्हारे आगमन की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। तुम उपस्थित होकर मेरे स्वागत को ग्रहण करो, मेरे अभिनन्दन को स्वीकार करो।

है वन्दनीय अग्निदेव ! मैं 'इयक्षु' हूँ, मेरे मन में यज्ञ करने की उत्कट लालसा उमड़ रही है। संसार में ज्यों-ज्यों आधि-व्याधियाँ, दुःख, दारिद्र्य बढ़ रहे हैं, त्यों-त्यों यज्ञ की भी आवश्यकता बढ़ती जा रही है। अतः मैंने यज्ञ करने का संकल्प किया है। मैं बाड़, दुभिक्ष, भूकम्प, भुखमरी, महामारी से कराह रहे जन-समाज को सेवा का व्रत लेता हूँ । मैं व्यापक संगठन करूंगा, स्वयं सेवक संघ बनाऊंगा। सहायता शिविर खोलूंगा। हमारे स्वयं सेवक आतुरों की मरहम-पट्टी करेंगे, अन्न-हीनों को भोजन देंगे, गृह-हीनों को निवास देंगे, कर्म-होनों को कार्य देंगे। क्या तुम पूछते हो कि सद यज्ञों के लिए धन कहाँ से आयेगा ? सुनो, संकल्प की दृढ़ता के आगे धनाभाव कभी बाधक नहीं होता। धन स्वयं बरसेगा। प्रभु यज्ञेच्छु के लिए मरुस्थल में प्याऊ के समान हो जाते हैं। वे स्वयं प्यासे को पानी पहुँचाने को, भूखे को भोजन पहुँचाने की, रोगात को औषध पहुँचाने की व्यवस्था करते हैं। मुझ 'पूरु' की, पालन-पूरण करनेवाले की भिक्षा-झोली भी वे स्वयं ही भरेंगे। और मैं उनका दूत बनकर भिक्षा बाँटने के लिए द्वार-द्वार पर पहुँचेगा । मेरा यज्ञ सफल होकर रहेगा।

योग के अंतराय (विघ्न)

–सेवक राम आर्य

'व्याधिस्त्यान संशय प्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्ध भूमिकत्वानव स्थितत्वानि चित्त विक्षेपास्तेऽन्तरायाः'- धातु, रस, इंद्रियों की विषमता से व्याधि चित्त की अकर्मण्यता स्त्यान, व्याधि शरीर के स्तर पर स्त्यान, मन के स्तर पर दोनों किनारों को छूने वाला संशय (शायद ऐसा है, शायद ऐसा नहीं है) समाधि के साधनों की इच्छा ना करना 'प्रमाद' शरीर तथा मन के भारीपन के कारण योग में प्रवृत्ति ना होना, आलस्य विषयों के प्रयोग वाली इच्छा (गर्ध) अविरति विपरीत ज्ञान भ्रांतिदर्शन (निश्चयात्मक होता है) समाधि की भूमियों (भेदों) का प्राप्त ना होना 'अलब्धभूमिकत्व' समाधि प्राप्त कर लेने पर चित्त अवस्थित हो जायेगा। ये नौ चित्त के विषय हैं। ये योग के मल प्रतिपक्ष अंतराय (विघ्न) हैं।

योग के उपविघ्न- दुःखदौर्मनस्यांगमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेप सहभुवः - दुःख आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविक त्रिविध दुःख दौर्मनस्य में क्षोभ बेचैनी अंगमेजयत्व अंगों का कांपना, श्वास प्रवासा, श्वास प्रश्वास का बढ़ जाना, यह दुःखादि उपविघ्न विक्षेपों के साथ साथ रहते हैं।

उक्त विघ्नों तथा उप विघ्नों में से 'प्रमाद' के बारे में थोड़ा विचार करते हैं कि प्रमाद क्या है। मानव जीवन अत्यंत दुर्लभ है। इसको सफल बनाने के लिए प्रायः सभी लोग पुरुषार्थ करते हैं। प्रयत्नशील रहते हैं। प्रयत्न यदि साधारण स्तर का है तो सफलता नहीं मिलती है। महाभारत में एक प्रसंग है की धृतराष्ट्र बहुत चिंतित रहते थे तो उन्होंने विदुर जी को बुलाकर उनसे मंत्रणा की विदुर जी ने उनसे कहा कि आप आचार्य

शेष पृष्ठ ६ पर.....

देवेन्द्रपाल वर्मा
प्रधान/संरक्षक

पंकज जायसवाल
मंत्री/सम्पादक

आर्य शिवशंकर वैश्य
प्रबन्ध सम्पादक

सम्पादकीय.....

श्रेष्ठता की कसौटी

"दूसरों को दुख देना, मूर्खता एवं दुष्टता है। स्वयं सुखी होना, बुद्धिमत्ता एवं सभ्यता है। और दूसरों को सुख देना, परोपकार एवं श्रेष्ठता है।"

इस संसार में सब प्रकार के लोग हैं। किन्हीं लोगों के संस्कार घटिया किस्म के हैं। किन्हीं के मध्यम, और किन्हीं के उत्तम संस्कार भी हैं। जिसके जैसे संस्कार हैं, वह व्यक्ति वैसे ही कर्म करता है।

"जो बुरे संस्कारों वाला व्यक्ति है, वह बुरे कर्म करता है, अर्थात दूसरों का शोषण करता है, उनको परेशान करता है, दुख देता है। झूठ छल कपट चोरी बेईमानी आदि करता है। संसार के बुद्धिमान लोग, और ईश्वर भी उसे मूर्ख और दुष्ट कहता हैं। ऐसे लोगों को समाज, राजा और ईश्वर अनेक प्रकार से दंड देते हैं।" समाज के लोग उस को अपमानित करते हैं। राजा उसे जेल में डाल देता है। "यदि वह दुष्ट व्यक्ति इनकी पकड़ में नहीं आया, तो अंत में ईश्वर उसे कीड़ा मकोड़ा पशु पक्षी वृक्ष वनस्पति जंगली जानवर या समुद्री जीव के रूप में जन्म देकर अनेक दुख देता है। उनकी सारी स्वतंत्रता छीन लेता है। इसलिए ऐसे काम नहीं करने चाहिएं।"

"दूसरे प्रकार के लोग ऐसे हैं, जो स्वयं सुखी रहते हैं। उनके संस्कार अच्छे हैं। वे बुद्धिमत्ता से काम करते हैं। सब काम समय पर करते हैं। नियम अनुशासन का पालन करते हैं। ऐसे लोग बुद्धिमान कहलाते हैं।" ईश्वर उन्हें सुख देता है। समाज के बुद्धिमान लोग भी उन्हें सुख देते हैं, और उन्हें अच्छा मानते हैं।

"तीसरे प्रकार के लोग बहुत अच्छे संस्कारी हैं। वे स्वयं तो सुखी रहते ही हैं, साथ ही साथ दूसरों को भी वे अनेक प्रकार से सुख देते हैं। उनकी सेवा करते हैं। परोपकार के कर्म करते हैं। यज्ञ करते हैं। वेदों का प्रचार करते हैं। वैदिक गुरुकुल आदि का संचालन करते हैं। गौशाला और अनाथालय चलाते हैं। धर्मार्थ औषधालय का संचालन करते हैं। वे गरीब तथा रोगी लोगों की सेवा और रक्षा करते हैं। इस प्रकार के कर्म करने वाले जो परोपकारी लोग हैं, वे श्रेष्ठ कहलाते हैं। ईश्वर ऐसे श्रेष्ठ व्यक्तियों का सम्मान करता है।"

इन तीनों की तुलना करें और देखें, कि इन तीनों में से कौन अधिक अच्छा है? "फिर आप अपना भी परीक्षण करें, कि आप इन तीनों में से किस वर्ग में आते हैं। धीरे-धीरे अपने स्तर को ऊंचा उठाते हुए तीसरे वर्ग में आना चाहिए। सेवा परोपकार का आदि कर्म करके श्रेष्ठ बनना चाहिए।" "जब आप तीसरे वर्ग में अर्थात 'श्रेष्ठ' की श्रेणी में आ जाएंगे, तो ईश्वर आपका 'सम्मान' करेगा। ईश्वर, श्रेष्ठ व्यक्तियों का सम्मान करता है। जो व्यक्ति ऐसे श्रेष्ठ बनकर ईश्वर से सम्मानित होता है, वही वास्तव में देवता है, उसी का जीवन सफल है।"

महर्षि देव दयानन्द आर्याभिनयः की भूमिका में इस सम्बन्ध में उल्लेख करते हैं-

विमलं सुखदम् सततम् सुहितं, जगति प्रततं तदु वेदगतम्।
मनसि प्रकटं यदि यस्य सुखी, स नरोस्ति सदेश्वरभागधिकः।।
विशेष भागहि वृणोति यो हितम् नरः परात्मानमतीव मानतः।
अशेष दुःखात्तु विमुच्य विद्यया, स मोक्षमाप्नोति न काम कामुकः।।

अर्थात्-जो ब्रह्म विमल सुख कारक पूर्ण कामु तृप्त, जगत में व्याप्त वही सब वेद से प्राप्य है, जिसके मन में इस ब्रह्म की प्रकटता यथार्थ विज्ञान है वही मनुष्य ईश्वर के आनन्द का भागी है और वही सबसे सदैव अधिक सुखी है। ऐसे मनुष्य को धन्य है।

जो नर इस संसार में अत्यन्त प्रेम, धर्मात्मा, विद्या, सत्संग, सुविचारता, निर्वैरता, जितेन्द्रियता, प्रत्यक्षादि प्रमाणों से परमात्मा का स्वीकार (आश्रय) करता है वही मनुष्य अतीव भाग्यशाली है, क्योंकि वह मनुष्य यथार्थ सत्य विद्या से सम्पूर्ण दुःखों से छूट कर परमानन्द परमात्मा की प्राप्ति रूप जो मोक्ष उसको प्राप्त है और दुःख सागर से छूट जाता है परन्तु जो विषय-लम्पट, विचार रहित, विद्या, धर्म, जितेन्द्रियता, सत्संग रहित, छल, कपट, अभिमान, दुराग्रहादि, दुष्टतायुक्त है सो वह मोक्ष सुख को प्राप्त नहीं होता क्योंकि वह ईश्वर भक्ति से विमुख है।

एक सफल, सजग मनुष्य के यही लक्षण हैं।

-सम्पादक

गतांक से आगे.....

सत्यार्थ प्रकाश

अथ त्रयोदश समुल्लास

अथ कृश्चीनमत विषयं व्याख्यास्यामः

जबूर का दूसरा भाग

काल के समाचार की पहली पुस्तक

मत्ती रचित इञ्जील

८१-भोर को जब वह नगर को फिर जाता था तब उसको भूख लगी।। और मार्ग में एक गूलर का वृक्ष देख के वह उस के पास आया परन्तु उस में और कुछ न पाया केवल पत्ते। और उसको कहा तुझ में फिर कभी फल न लगेंगे। इस पर गूलर का पेड़ तुरन्त सूख गया।। -इ० म० प० २१ आ० १८ १९।।

(समीक्षक) सब पादरी लोग ईसाई कहते हैं कि वह बड़ा शान्त क्षमान्वित और क्रोधादि दोषरहित था। परन्तु इस बात को देख क्रोधी, ऋतु का ज्ञानरहित ईसा था और वह जंगली मनुष्यपन के स्वभावयुक्त वर्त्तता था। भला! जो वृक्ष जड़ पदार्थ है। उसका क्या अपराध था कि उसको शाप दिया और वह सूख गया। उसके शाप से तो न सूखा होगा किन्तु कोई ऐसी औषधि डालने से सूख गया हो तो आश्चर्य नहीं।। ८१।।

८२-उन दिनों के क्लेश के पीछे तुरन्त सूर्य अन्धियारा हो जायगा और चांद अपनी ज्योति न देगा! तारे आकाश से गिर पड़ेंगे और आकाश की सेना डिग जायेगी।। -इ० म०प० २४। आ० २९।।

(समीक्षक) वाह जी ईसा! तारों को किस विद्या से गिर पड़ना आपने जाना और आकाश की सेना कौन सी है जो डिग जायेगी ? जो कभी ईसा थोड़ी भी विद्या पढ़ता तो अवश्य जान लेता कि ये तारे सब भूगोल हैं क्योंकर गिरेंगे।इससे विदित होता है कि ईसा बढ़ई के कुल में उत्पन्न हुआ था। सदा लकड़े चीरना, छोलना, काटना और जोड़ना करता रहा होगा। जब तरंग उठी कि मैं भी इस जंगली देश में पैगम्बर हो सकूगा बातें करने लगा। कितनी बातें उस के मुख से अच्छी भी निकली और बहुत सी बुरी वहां के लोग जंगली थे, मान बैठे। जैसा आज कल यूरोप देश उन्नति युक्त है वैसा पूर्व होता तो ईसा की सिद्धाई कुछ भी न चलती। अब कुछ विद्या हुए पश्चात् भी व्यवहार के पेच और हठ से इस पोल मत को न छोड़ कर सर्वधा सत्य वेदमार्ग की ओर नहीं झुकते यही इनमें न्यूनता है।।८२।।

क्रमशः अगले अंक में...

दयानन्द शास्त्रार्थ प्रश्नोत्तर-संग्रह

नास्तिक तथा जैन मत

मिति कार्तिक सुदि ४, शनिवार, संवत् १९३७ तदनुसार ६ नवम्बर सन् १८८०

कृपाराम मन्त्री, आर्यसमाज - देहरादून

अपने हस्ताक्षरों से आत्माराम जी ने जो प्रश्न भेजे थे- १४ नवम्बर सन् १८८० को उनके नाम स्वामी जी ने यह पत्र भेजा-

पूज्यवर आत्माराम जी, "मिती १४ नवम्बर सन् १८८०"

नमस्ते । पत्र आपका मिती नवम्बर सन् १८८० का लिखा हुआ १० नवम्बर सन् १८८० की सांयकाल को मेरे पास पहुंचा, देखकर आनन्द हुआ। अब आपके प्रश्नों का उत्तर विस्तारपूर्वक लिखता हूँ ।

(समाचार पत्र "आफताबे पंजाब," १३ दिसम्बर, १८८०)

प्रश्न नं० १ – सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास १२ पृष्ठ ३९६, पंक्ति १६) में लिखा है कि जब प्रलय होता है तो पुद्गल जुदी-जुदी हो जाते हैं ऐसा नहीं है ।

उत्तर-मैंने ठाकुरदास जी के उत्तर में एक पत्र आर्यसमाज गूजराँवाला के द्वारा भेजा था, जो आपके पास भी पहुंचा होगा। उसमें यह बतलाया गया है कि जैन और बौद्ध दोनों एक ही हैं चाहे उनको बौद्ध कहो चाहे जैन कहो । कुछ स्थानों में महावीरादि तीर्थंकरों को बुद्ध और बौद्धादि शब्दों से पुकारते हैं। और कई स्थानों पर जिन, जैन, जिनवर, जिनेन्द्रादि नामों से बोलते हैं। जिनको चार्वाक बुद्ध की शाखाओं में कहते हैं उन्हें लोग बुद्ध, स्वयं बुद्ध और चारबोधादि कहते हैं। आप अपने ग्रन्थों में देख लिजिये (ग्रन्थ विवेकसार, पृष्ठ ६५, पंक्ति १३) बिध, बोध - यह एक सिद्ध अनेक सिद्ध भगवान् हैं (पृष्ठ ११३, पंक्ति ७)।

चारबुद्ध की कथा (पृष्ठ १३७, पंक्ति ८) प्रत्येक बुद्ध की कथा (पृष्ठ १३८ पंक्ति २१) स्वयं बुद्ध की कथा (पृष्ठ १५२ पंक्ति १४)।

चार बुद्ध समकाल मोक्ष को गये । इसी प्रकार और भी आपके ग्रन्थों से कथा स्पष्ट विद्यमान हैं जिनको आप या और कोई जैन श्रावक विरुद्ध न कह सकेंगे ।

और ठाकुरदास जी पहली चिट्ठी में (उन श्लोकों के साथ जो मैंने इससे पहले पत्र में लिखकर आपके पास भिजवाये हैं आप लोग कई श्लोक स्वीकार भी कर चुके हैं। उस चिट्ठी की प्रतिलिपि मेरठ में है और आपके पास भी होगी । कल्पभाष्य भूमिका (जिसमें राजा शिवप्रसाद जी ने अपने जैनमतस्थ पितादि पूर्व पुरुषों की परम्परा का वृत्तान्त लिखा है, उनकी साक्षी भी लिख भेजी और इतिहासतिमिर नाशक खंड ३, पृष्ठ ८, पंक्ति २१ से लेकर पृष्ठ ९ की पंक्ति ३२ तक) स्पष्ट लिखा है कि जैन और बौद्ध एक हो के नाम हैं।

कई स्थानों पर महावीरादि तीर्थंकरों को बौद्ध कहते हैं, उन्हीं को आप लोग जैन और जिनादि कहते हैं। अब रहे बौद्ध की शाखाओं के भेद जो चार्वाक अभ्यारणकादि हैं जैसा कि आपके यहाँ श्वेताम्बर, दिगम्बर, ढूंढिया आदि शाखाओं के भेद हैं कि उनमें कोई शून्यवाद, कोई क्षणिक, कोई जगत् को नित्य मानने वाला कोई अनित्य मानने वाला कोई स्वभाव से जगत् की उत्पत्ति और प्रलय मानते हैं और कोई आत्मा को पांच तत्त्वों (पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और उनके मेल से) बनी हुई मानते हैं और उसका नाश हो जाना भी मानते हैं (देखो रत्नावली ग्रन्थ, पृष्ठ ३२ पंक्ति १३ से लेकर पृष्ठ ४३ पंक्ति १० तक) कि उस स्थान पर सब जगत् की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय ही लिखा है या नहीं।

इसी प्रकार चार्वाकादि भी कई शाखावाले जिसको आप पुद्गल कहते हैं, उसको अलूदादि नाम से लिखते हैं और उनके आपस में मिलने से जगत् की उत्पत्ति और अलग होने से प्रलय होना ही मानते हैं और वे जैन और बोद्ध से पृथक् नहीं हैं प्रत्युत जैसे पौराणिक मत रामानुजादि वैष्णवों की शाखा और पाशुपतादि शंवोंकी और वाममागियों की दस महादायास शाखाएं, और ईसाइयों में रोमन कैथलिक आदि और मुसलमानों में शिया और सुन्नी आदि शाखाओं के कतिपय भेद हैं और इतने पर भी वेद और बाईबिल और कुरान के सम्प्रदाय में वे एक ही समझे जाते हैं। वैसे ही आप के अर्थात् जैन और बौद्ध मत की शाखाओं के भेद यद्यपि अलग-अलग लिखे जा सकते हैं परन्तु जैन या बौद्ध मत में एक ही हैं।

आपने बौद्ध अर्थात् जन मत के प्रत्येक सम्प्रदाय के तन्त्र सिद्धान्त अर्थात् भेद वर्णन करने वाले ग्रन्थ देखे होते तो सत्याथप्रकाश में जो लेख उत्पत्ति और प्रलय के विषय में है उस पर शंका कभी न करते ।

‘ब्रह्मचर्यादि चार आश्रमों में गृहस्थ आश्रम ही ज्येष्ठ है’

-मनमोहन कुमार आर्य
देहरादून।

वैदिक धर्म वह धर्म है जिसका आविर्भाव ईश्वर प्रदत्त ज्ञान ‘वेद’ के पालन व आचरण से हुआ है। वैदिक धर्म के अनुसार मनुष्य को ईष्वर प्रदत्त शिक्षाओं को ही मानना व आचरण करना होता है। ऐसे ग्रन्थ वेद हैं जिसमें परमात्मा के सृष्टि की आदि में दिए गये सभी वचन व शिक्षायें विद्यमान है। हमारे विद्वान मनीषी ऋषियों की मान्यता रही है कि वेद सब विषयों में स्वतः प्रमाण है और अन्य ग्रन्थ व विद्वानों के वचन व बातें परतः प्रमाण है। किसी भी ग्रन्थ की वही बातें प्रामाणिक होती है जो वेदों की मान्यता व भावना से पुष्ट होती हैं। इसी आधार पर ऋषि दयानन्द जी ने वेदों को विद्या के ग्रन्थ कहा है और इतर सभी ग्रन्थों की जो बातें वेद विरुद्ध देखने को मिली उसको उन्होंने अविद्या बताया व उसका प्रसंगानुसार युक्तियों एवं तर्कों से खण्डन भी किया है। वह कहते हैं कि मनुष्य जाति की उन्नति का एक मात्र कारण सत्य का ग्रहण करना और असत्य का त्याग करना है। सत्य वही होता है कि जो विद्या से युक्त तथा अविद्या से रहित हो। अतः सभी मनुष्यों को वेदों का अध्ययन कर उससे ईश्वर, जीव तथा सृष्टि सहित मनुष्य के कर्तव्यों एव आचरणों आदि की शिक्षा लेकर उसी के अनुसार आचरण व कार्य करने चाहियें। यदि हम ऐसा करेंगे तो हम एक सच्चे ईश्वरभक्त होकर धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को प्राप्त करने की दिशा में आगे बढ़ सकते हैं और इनको यत्किंचित प्राप्त भी कर सकते हैं। वेद विरुद्ध आचरण अशुभ व पाप कर्मों में आता है। इससे मनुष्य की आत्मा व जीवन की उन्नति न होकर अवनति होती है। मनुष्य को जीवन के उत्तर काल में ज्ञान प्राप्त होने पर पछताना पड़ता है। अतः मनुष्यों का कर्तव्य है कि वह विद्वानों की संगति करें और उनके जीवन व आचरण के अनुकूल अपने जीवन व आचरण को बनायें। ऐसा करके एक साधारण अशिक्षित मनुष्य भी जीवन में उच्च स्थिति को प्राप्त हो सकता है। आर्यसमाज में जाने पर इस उद्देश्य की पूर्ति होती है। वहां अनेक विषयों के विद्वानों तथा सभ्य पुरुषों सहित महात्माओं एवं विरक्त संन्यासियों के दर्शन होने सहित उनके विचार सुनने को मिलते हैं। आर्यसमाज में सन्ध्या तथा यज्ञ, माता–पिता की सेवा, अतिथि सत्कार तथा पशुओं से प्रेम आदि की शिक्षा सहित सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका एवं वेदों के स्वाध्याय की प्रेरणा मिलती है। इस प्रक्रिया से मनुष्य की आत्मा, मन व बुद्धि सहित शरीर की उन्नति होती है तथा वह सामाजिक व पारलौकिक उन्नति को भी प्राप्त होता है।

वेदों ने मनुष्य की आयु लगभग 100 वर्ष को चार आश्रमों में विभक्त किया है। मनुष्य का जीवन काल जन्म लेकर शैशवास्था से हो आरम्भ होता है। आरम्भ में माता–पिता के सान्निध्य में रहकर शिशु आरम्भिक ज्ञान एवं शारीरिक पोषण प्राप्त करता है। आठ वर्ष व उससे कुछ कम वय का होने पर उसे गुरु के पास अध्ययन के लिये भेजा जाता है। उसका अध्ययन सामान्यतः 25 वर्ष में पूरा होता है। इस 25 वर्ष की आयु को ब्रह्मचर्य आश्रम कहा जाता है। प्राचीन काल के वैदिक युग में इस अवस्था में मनुष्य अधिक से अधिक विद्याओं को ग्रहण करते थे जिसमें वेदों का यथोचित ज्ञान प्राप्त करना मुख्य कर्तव्य होता था। विद्या पूरी करने पर ब्रह्मचारी का समावर्तन व विवाह संस्कार होता था। विवाह होने पर युवक व युवती का ग्रहस्थ आश्रम में प्रवेश होता है। इस आश्रम की अवधि भी 25 वर्ष निर्धारित है। गृहस्थ जीवन में रहकर मनुष्य को अर्थोपार्जन करने सहित सन्तानों को जन्म देना व उन्हें सुसंस्कारित करने सहित उनको विद्यावान बनाना होता है। अतिथियों का सत्कार तथा माता पिता आदि संबंधियों की सेवा करनी होती है। ऐसा करना माता पिता व विद्वान अतिथियों के ऋण से उऋण होने सहित सामाजिक तथा देश की उन्नति के लिये आवश्यक होता है। गृहस्थ जीवन में माता–पिता व दम्पत्तियों को यथासमय ईश्वरोपासना तथा दैनिक यज्ञ सहित परोपकार व दान आदि का भी सेवन करना होता है। स्वाध्याय प्रत्येक गृहस्थी के लिए अनिवार्य होता है। इससे

मनुष्य का ज्ञान बढ़ने सहित आत्मा की उन्नति भी होती है। स्वाध्याय से हम सावधान रहते हैं और मिथ्या व अन्धविश्वासों में नहीं फंसते तथा अपने स्वाध्याय से अर्जित ज्ञान से अन्धविश्वासों में फंसे अपने निकटस्थ बन्धुओं को निकालने में भी सहयोगी होते हैं। अतः गृहस्थ जीवन काल में प्रत्येक दम्पत्ति को वैदिक धर्म की मान्यताओं के अनुसार अपने सभी कर्तव्यों का सेवन करना चाहिये और मुख्यतः अपनी सन्तानों को वेदों के अनुसार वेद व वैदिक साहित्य का ज्ञानी व बलिष्ठ बनाना चाहिये। वह सब सदाचारी हों इसी में माता–पिता के जीवन की सार्थकता होती है।

जब गृहस्थी पचास वर्ष की आयु के हो जायें तो उन्हें अपने गृहस्थ के दायित्वों को अपने पुत्रों को सौंप कर वानप्रस्थी होने का विधान वैदिक धर्म में किया गया है। आजकल स्थिति सर्वथा भिन्न है। वैदिक काल में ऐसा होता रहा है, ऐसा हम अनुमान व विश्वास करते हैं। आज भी आर्यसमाज से जुड़े लोग अपनी अपनी भावना व सुविधा के अनुसार वानप्रस्थी बनते हैं। आर्यसमाज के एक विद्वान एवं ऋषि दयानन्द भक्त श्री शैलेशमुनि सत्यार्थी जी हैं। उन्होंने वानप्रस्थ आश्रम की लगभग सही समय पर दीक्षा ली। वर्तमान में वह आर्यसमाज द्वारा संचालित आर्य वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम, ज्वालापुर–हरिद्वार में निवास करते हैं। उनका जीवन अध्ययन, चिन्तन, मनन तथा वैदिक धर्म के प्रचार में व्यतीत होता है। फेसबुक आदि के माध्यम से भी वह लोगों को सत्प्रेरणायें करते रहते हैं। ऐसे लोगों से ही वैदिक धर्म व संस्कृति की शोभा है। सभी को उनका और उनके अनुरूप सामाजिक जीवन व्यतीत कर रहे विद्वानों, महात्माओं व संन्यासियों के जीवन का अनुकरण करना चाहिये। वानप्रस्थ में रहकर हम स्वाध्याय, चिन्तन, मनन, ईश्वर का ध्यान तथा यज्ञ आदि से अपने जीवन में शुभ कर्मों का संचय कर इसे मुक्ति प्राप्त करने की ओर अग्रसर कर सकते हैं। इससे आत्मा तथा ईश्वर के साक्षात्कार में भी हम उन्नति कर सकते हैं। अतः वानप्रस्थ आश्रम का अपना महत्व है। सारा जीवन धनोपार्जन में लगे रहना आदर्श व प्रशंसनीय मनुष्य जीवन नहीं है। जीवन में स्वाध्याय के साथ ईश्वर प्राप्ति की साधना सहित आत्मा व जीवन को ऊंचा उठाने के कार्य होने चाहियें जिनके लिये वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश लेकर इस आश्रम के कर्तव्यों की पूर्ति के लिए अवकाश निकालना चाहिये। यह ध्यान रखना चाहिये कि हमारा जीवन किसी भी समय समाप्त हो सकता है। हम कल रहेंगे या नहीं, यह किसी को पता नहीं। अतः हमें समय रहते और ऋषियों के विधानों पर आस्था रखकर उनका यथाशक्ति श्रद्धापूर्वक पालन करना चाहिये। वानप्रस्थ का काल आत्मकल्याण का काल होता है। इसमें हम धर्म प्रचार का कार्य भी कर सकते हैं जिससे हमें पुण्यकर्मों का लाभ प्राप्त होने सहित हमारी आत्मा की उन्नति भी होती है और हमारा समाज व देश संवरता है।

मनुष्य जीवन का चौथा आश्रम संन्यास आश्रम है। इसकी अवधि सामान्यतः 75 वर्ष की आयु से आरम्भ होती है। वैराग्य होने पर इसे ब्रह्मचर्य के बाद कभी भी धारण किया जा सकता है। इस अवस्था में मनुष्य को अपना समय ईश्वर की प्राप्ति हेतु साधना में लगाने के साथ पूर्व के तीन आश्रम में जो ज्ञान व अनुभव प्राप्त किया होता है उससे समाज व देश का मार्ग दर्शन करना होता है। ऋषि दयानन्द का जीवन एक आदर्श संन्यासी का जीवन था। स्वामी श्रद्धानन्द, स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती एवं महात्मा नारायण स्वामी आदि विद्वान हमारे आदर्श संन्यासी रहे हैं। हमें इनके जैसा जीवन बनाकर परमार्थ का संग्रह करना है। संन्यास में मनुष्य का अपने परिवार से संबंध समाप्त हो जाता है। पूरा विश्व व इसके सभी लोग ही संन्यासी का परिवार होते हैं। इनके कल्याण के लिये ही वह सत्योपदेश एवं इतर कार्य करता है। वैदिक काल में यह व्यवस्थायें उत्तम अवस्था को प्राप्त थी। महाभारत युद्ध के बाद देश व समाज का पतन हुआ। वेदों का व्यवहार आलस्य व प्रमाद के कारण छूट गया। समाज में नाना प्रकार के अन्धविश्वास व कुरीतियां उत्पन्न हुईं। आज यह वृद्धि को प्राप्त हो रही हैं। ऋषि दयानन्द ने अज्ञान, अन्धविश्वास, पाखण्ड और कुरीतियों को दूर करने के अनेक प्रयत्न किये परन्तु अविद्यायुक्त मत–मतान्तरों एवं आचार्यों ने उनके इस दैवीय–कार्य में सहयोग नहीं किया। परिणाम हमारे सामने है। आज स्थिति भयावह है। हमारे भाईयों का धर्मान्तरण एवं अनेक प्रकार से उत्पीड़न किया जाता है और हम एक दर्शक बन कर रह जाते हैं। ऐसी समस्याओं का हमारे पास कोई समाधान नहीं है। हमारी व्यवस्था भी लाचार दीखती है। यह स्थिति वेद प्रचार व संगठन को बलवान बनाकर ही कुछ हल की जा सकती है। अतः सुख, शान्ति और कल्याण की विश्व में स्थापना हेतु वैदिक आश्रम व्यवस्था को लागू करने की महती आवश्यकता है। आर्यसमाज इसके लिए प्रयत्नशील है। ईश्वर कृपा करेंगे तो यह कार्य भविष्य में शायद सफल हो सकेगा।

वैदिक धर्म में चार आश्रम हैं। इनमें अपनी अपनी जगह सभी बड़े हैं परन्तु गृहस्थाश्रम का महत्व अधिक माना जाता है। ब्रह्मचारी स्वयं को बड़ा, वानप्रस्थी स्वयं

क्रमशः.....८ पर

ईश्वर के रचनात्मक व क्रियात्मक कार्यो के -हमारी मान्यता वाले महापुरुष (भगवान) ईश्वर के आधीन रहते हैं, तुलनात्मक सत्य-

-पं० उम्मेद सिंह विशारद
मो० ६४११५१२०१६

ईश्वर और भगवान की परिभाषा–

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी आर्य समाज के द्वितीय नियम में ईश्वर की परिभाषा में निम्न ईश्वर के गुण वाचक शब्द लिखते हैं, तथा महर्षि जी ने ही सत्य ईश्वर का ज्ञान कराया है।

ईश्वर

ईश्वर सचिदानन्द स्वरूप-निराकार-सर्वशक्तिमान-न्यायकारी-दयालु-अजन्मा-अनन्त-निर्विकार- अनादि - अनुपम -सर्वाधार -सर्वेश्वर -सर्वव्यापक -सर्वान्तर्यामी -अजर -अमर -अभय -नित्य -पवित्र और सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करने योग्य है।

भगवान

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसश्रयः ।
ज्ञानेवेराग्योश्चैव षण्णां भग इतीरणा ।।

अर्थात् :- सम्पूर्ण ऐश्वर्य-धर्म-यश-ज्ञान-वेराग्य-श्री -इन छह नामों का नाम भग है। इनमें से जिस किसी के पास एक भी भग होता है या उर्पयुक्त सभी गुण होते है, उसे भगवान कहा जाता है, और यह गुण महापुरूष पर ही हो सकते है। ईश्वर में यह गुण नहीं घट सकते है क्योंकि ईश्वर सारे गुणों की खान है और सर्वगुण सम्पन्न है ईश्वर में किसी भी गुण की कमी नहीं है। गुणों की कमी केवल मानव में ही हो सकती है। इसलिए मनुष्यों को विद्याा अध्ययन करना पड़ता है, साधना करनी पड़ती है। दिव्य आत्माओं पर उक्त छह गुण होने से वह भगवान कहलाते है।

श्रीराम एंव श्रीकृष्ण के पास तो सारे भग अर्थात सम्पन्नता उपलब्ध थी इसीलिए उन्हें भगवान कह कर पुकारते है परन्तु वह ईश्वर नहीं थे वे महामानव थे यदि उनके चरित्र व जीवन का हम अनुकरण करेगे तो हमारा मनुष्य जीवन सफल हो सकता है।

ईश्वर सारे ब्रह्माण्ड का रचयिता है

ईश्वर ने सारे ब्रह्माण्ड को रचाया है, तथा प्रकृति के प्रत्येक तत्व एक निरधारित गति से अपने अपने कार्य कर रहे हैं। ईश्वर सृष्टि की स्थिति उत्पत्ति व प्रलय करता है।

मनुष्य रूपी भगवान

मनुष्य रूपी भगवान अल्प शक्ति वाला होता है और ईश्वर के द्वारा प्रकृति के नियम व रचना में ही अपना जीवन जन्म और मृत्यु में बिताता है।

ईश्वर सारे जीवों का पालन पोषण हेतु भोग सामग्री देता है

ईश्वर तथा प्रकृति दोनों परस्पर एक विरूप है, अर्थात् पुरूष परमेश्वर अपरमाणी अविकारी- सर्वज्ञ-रचयिता है और प्रकृति परिणामिनी अचेतन है। दोनों में अन्तर होने पर भी एक बात समान है वह जीव रूप पुत्र की दोनों पालना करते हैं। जीव को भोग साधन-इन्द्रिया यह देन प्रकृति की है और भोग की लालसा आत्मा में है उसकी पूर्ति-प्रकृति से होती है। प्रकृति के सहारे के बिना जीव संसार में एक कार्य भी नहीं कर सकता है। जीव के दो लक्ष्य है भोग और मोक्ष। प्रकृति से ही भोग मिलता है किन्तु इनको बनाने वाला ईश्वर है।

मनुष्य रूपी महामानव (भगवान)

मनुष्य रूपी भगवान ईश्वर द्वारा प्रदत भोग सामग्री मे ही जीवन बिताता है।

ईश्वर कर्म फलदाता हैं

ईश्वर जीव को कर्मानुसार फल देता है इसलिए इसका प्रधान कारण ईश्वर है। जीव का दूसरा लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति है। जीव को मोक्ष प्राप्ति के लिए प्रकृति तथा ईश्वर इन दोनों की सहायता लेनी पड़ती है। किन्तु जीव की प्रकृति के साथ घनिष्टता होने के कारण जीव विषयों के कर्म बन्धन में फंस जाता है। जीव इन्द्रियों का रसिक हो जाता है, और ईश्वर जीव के कर्मानुसार यथा योग्य कर्म फल देता है।

मनुष्य रूपी महामानव (भगवान)

मनुष्य रूपी भगवान कर्म करके कर्म फल ईश्वर के अधीन पाता है।

ईश्वर सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय करता है।

जैसे दिन के पूर्व रात और रात के पूर्व दिन चला आता है, इसी प्रकार सृष्टि के पूर्व प्रलय और प्रलय के पूर्व सृष्टि तथा सृष्टि के पीछे प्रलय और प्रलय के आगे सृष्टि अनादिकाल से चक्र चला आता है। इसकी आदि व अन्त नहीं। किन्तु जैसे दिन और रात का प्रारम्भ देखने में आता है उसी प्रकार सृष्टि और प्रलय का आदि अन्त होता रहता है। क्योंकि जैसे परमात्मा जीव जगत का कारण तीन स्वरूप से अनादि है वैसे जगत की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय प्रवाह से अनादि है। जैसे कभी ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव का आरम्भ और अन्त नहीं इसी प्रकार उसके कर्त्तव्य-कर्मों का भी प्रारम्भ और अन्त नहीं इसी उसके कर्त्तव्य कर्मों का भी आरम्भ और अन्त नहीं। (सत्यार्थ प्रकाश)

मनुष्य रूपी महामानव (भगवान)

मनुष्य रूपी मान्यता महामानव भगवान ईश्वर की सृष्टि क्रम व्यवस्था मे रहता है।

ईश्वर अजन्मा और अविनाशी हैं।

परमात्मा से कोई तदूप कार्य और उसका कारण अर्थात् साधक तक दूसरा अपेक्षित नहीं, न उसके कोई तुल्य है और न अधिक है। सर्वोत्तम शक्ति अर्थात् जिसमें अनन्त ज्ञान अनन्त बल और अनन्त क्रिया है। वह स्वाभाविक अर्थात् सहज उसमें सुनी जाती है। जो परमेश्वर निष्क्रिय होता तो जगत की उत्पत्ति-स्थिति प्रलय न कर सकता, इसलिए वह विभु तथापि चेतन होने से उसमें क्रिया भी है। इसलिए ईश्वर अजन्मा और अविनाशी है।(सत्यार्थ प्रकाश)

मनुष्य रूपी महामानव (भगवान)

मनुष्य रूपी भगवान जन्म लेने वाला व एकदेशी है और नाशवान है।

ईश्वर निराकार है –व साकार है

ईश्वर निराकार है, क्योंकि जो साकार होता तो व्यापक न हो सकता। जब व्यापक न होता तो सर्वज्ञादि गुण भी न हो सकते। क्योंकि परिमित वस्तु में गुण-कर्म -स्वभाव भी परिमित रहते हैं तथा शीतोश्ण-क्षुधा-तृशा-और रोग-दोश छेदन-भेदन आदि से रहित नहीं हो सकता। इससे यह निश्चित है ईश्वर निराकार हैं, और जो साकार होता तो उसका आकार बनाने वाला दूसरा होना चाहिए। क्योंकि जो संयोग से उत्पन्न होता तो उसको संयुक्त करने वाला निराकार चेतन अवश्य होना चाहिए। जो कोई कहे कि ईश्वर ने अपना शरीर बना लिया तो वही सिद्ध हुआ कि शरीर बनने से पूर्व निराकार था। इसलिए वह परमात्मा न शरीर धारण करता, निराकार होकर सब जगत को सूक्ष्म आकार से स्थूलाकार बनाता है।(सत्यार्थ प्रकाश)

मनुष्य रूपी महामानव (भगवान)

मनुष्य रूपी भगवान एक देशी आकार वाला अल्प शक्ति वाला है व ईश्वर के अधीन रहता है।

ध्यानाकृष्ण

ईश्वर ने सृष्टि की रचना अल्प शक्तिवान जीवों के लिए की है और सारे जीव चाहे वह साधारण हो या महामानव देव हो सभी ईश्वर की व्यवस्था में कर्म भोग चक्र भोगते हैं। जिस दिन हमें यह ज्ञान हो जायेगा कि महामानव भगवान ईश्वर के तुल्य अल्पशक्ति वाले है और ईश्वर नहीं हो सकते है उसी दिन से हम महापुरूषो को ईश्वर न मानकर **उनके आदर्श गुणो को धारण वाले बन जायेगें, और मानव जगत में धार्मिक शोषण से बच जायेगे। कोई भी तथाकथित चतुर व्यक्ति धार्मिक चोला पहने हमे दिगभ्रमित नहीं कर सकेगा।**

●●●

Doctor & Company
(उच्च क्वालटी की हर्बल औषधि निर्माता)
शीघ्र आवश्यकता – सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश में
मेडिकल रिप्रेजन्टेटीव,
सेल्स एक्जिकेटिव,
एरिया मैनेजर,
टीम लीडर / ग्रुप लीडर
योग्यता – 10th, 12th ग्रेजुएट
महिला / पुरुष अभ्यार्थी
अपना बायोडाटा भेजें और
संपर्क करें 8439222409
Email-
docotorandcompany
8439@gmail.com
आकर्षक वेतन, भत्ता
इंसेटिव, बोनस

आर्य समाज ही समाज को दिशा देने में सक्षम

आर्य समाज फरीदपुर, बरेली के प्रधान बिजय बहादुर गौड़ जी के निर्देशन में शिव मन्दिर फरीदपुर में नवीन आर्य समाज की स्थापना के तृतीय वर्ष के अवसर पर चतुर्वेदशतकम् यज्ञ का आयोजन दिनांक ०३ जुलाई, २०२३ को किया गया। इस अवसर पर वैदिक प्रवक्ता डॉ. श्वेत केतु शर्मा बरेली के ब्रह्मणत्व व आर्य विद्वान विजय देव शर्मा के निर्देशन में विशाल यज्ञ सम्पन्न हुआ, इस अवसर पर डा श्वेत केतु ने यज्ञ की महिमा व आर्य समाज की स्थापना के उद्देश्य पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि यज्ञ आधिदैविक आधिभौतिक शारीरिक मानसिक सुख-शांति प्रदान करता है और आर्य समाज वेद की ओर लौटने के संदेश देता हुये संस्कार वान शिक्षा प्रदान करता है तथा अन्धविश्वास कुरीतियों को दूर करने हेतु प्रेरित करता है तथा स्त्री शिक्षा को महत्व प्रदान करता हुआ समाज को संस्कारवान श्रैष्ठ बनाने के लिए प्रेरित करता है।

इस अवसर पर प्रेम प्रकाश गुप्त इन्जिनियरिंग कालेज बरेली के निदेशक मेजर सुशील कुमार सक्सेना जी ने भी स्त्री शिक्षा व संस्कार परक जीवन बनाने पर बल दिया, वेद प्रचार मन्डल बरेली के अध्यक्ष विजेन्द्र नाथ गुप्ता जी ने भी वेद की लौटने का आवाहन किया व महर्षि दयानंद सरस्वती के बताए मार्ग पर चल जीवन को श्रैष्ठ बनायें तथा इस शिव मन्दिर परिसर में विशाल यज्ञशाला बनाने के लिए प्रेरित किया ।

अपार जनसमूह ने वेदमंत्रों से यज्ञ आहूति प्रदान की। आयोजक विजय बहादुर गौड़ जी ने कहा कि इस स्थान पर आर्य समाज की नींव रख कर समाज में राष्टीय सामाजिक मूल्यों के उत्थान में मदद मिलेगी, इस अवसर पर विजेन्द्र नाथ गुप्ता जी ने पांच छात्राओं को सत्यार्थ प्रकाश व वैदिक साहित्य भेंट भी किया ।

इस अवसर पर चतुर्वेदशतकम् यज्ञ में कर्मठता से आर्य समाज की ज्योति को गौरवान्वित करने पर राजा जी, कुलदीप, पंकज को माल्यार्पण कर सम्मानित किया गया। यज्ञ व्यवस्था में पुरोहित मानवीय सिंह व पुरोहित भूदेव सिंह का अपूर्व सहयोग रहा ।

संचालन फरीदपुर आर्य समाज के प्रधान विजय बहादुर गौड़ ने किया।

असैद्धान्तिक गणित का परिणाम है– श्रावण का नकली मलमास

-आचार्य दार्शनेय लोकेश

उन सबको जिनको कि थोड़ी सी भी ज्योतिषीय बातें या पंचाङ्ग से जुड़ी हुई बातें समझने की क्षमता प्राप्त है, अवश्य ही मेरे इस लेख से ज्ञान का एक बड़ा लाभ होने वाला है। मेरा मानना ही नहीं एक निवेदन भी है कि लेख में दिए गए तथ्यों को समझना आपका एक सांस्कृतिक दायित्व है।

मेरे प्यारे धर्म और संस्कृति प्रेमी जनो, सादर नमस्ते।

पारम्परिक पंचाङ्गों के द्वारा दर्शाया जा रहा श्रावण मलमास नितान्त गलत और असैद्धान्तिक गणित का परिणाम है।

क्रान्ति (Declination of Sun) से सिद्ध यानी वास्तविक सौर सङ्क्रान्तियों को ध्यान में रखा गया होता तो श्रावण में मलमास आ ही नहीं सकता। जो भी लोग श्रावण में मलमास देख रहे हैं या समाज को बता रहे हैं उनको पहले क्रान्तिसाम्य युक्त वास्तविक सौर सङ्क्रान्तियों की ठीक ठीक जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए। तब ही सही पंचाङ्गीय मार्गदर्शन देना या प्राप्त करना सम्भव हो सकता है।

वास्तविक वैशाख सङ्क्रान्ति २१ मार्च २०२३ को ठीक ०२ बजकर ५५ मिनट पर हुयी है (सिद्धान्ततः सूर्य के शून्य क्रान्ति और शुन्य ही भोगांश पर)। इसी दिन, रात्रि २२ बजकर ५५ मिनट पर, वैशाख शुक्ल पक्ष के साथ वैशाख मास शुरू होता है। अगली वृष सङ्क्रान्ति घटित होती है २० अप्रैल २०२४ के १३ बजकर ४४ मिनट पर जबकि वैशाख कृष्ण पक्ष के साथ वैशाख मास समाप्त होता है इसी दिन ०९ बजकर ४४ मिनट पर यानी सङ्क्रान्ति घटित होने से पहले ही। इस प्रकार वैशाख चन्द्र मास सङ्क्रान्ति रहित होने से अशुद्ध यानी मलमास सिद्ध हुआ। अस्तु हमारे श्री मोहन कृति आर्ष पत्रकम् (एकमात्र वैदिक पंचाङ्ग) का वैशाख मलमास सिद्धान्तसम्मत और सही है।

स्वाभाविक है कि जब वैशाख में मलमास की सिद्धि हो चुकी है तो श्रावण मास में पुनः मलमास के होने का प्रश्न ही नहीं होता है। लगभग ३२ माह से पूर्व अगला मलमास नहीं आता। पारम्परिक पंचाङ्गों में भी परस्पर अगर सङ्क्रान्ति भेद होगा तो उनके मलमास या क्षयमास अलग हो जाया करेंगे। जितने मुंह उतनी बातें। जितने अयनांश (वास्तविक सम्पात से पंचाङ्गकारों द्वारा लिये जाने वाले काल्पनिक सम्पात के बीच का अन्तर अयनांश कहलाता है) उतने मलमास। पुणे महाराष्ट्र से प्रकाशित उक्त तिलक पंचाङ्ग में इस संवत् में कोई मलमास है ही नहीं। और है तो अगले संवत् के चैत्रमास में है। तिलक पंचाङ्ग की मकर सङ्क्रान्ति आजकल १० जनवरी को होती है जबकि पारम्परिक अन्य पंचाङ्गों की मकर सङ्क्रान्ति १४ या १५ जनवरी को हो रही है। सच्चाई ये है कि मकर सङ्क्रान्ति का सम्बन्ध परमक्रान्ति (Maimum Declination) यानी सूर्य की २३° और लगभग २७ क्रान्ति से होता है जो कि २१/२२ दिसंबर को होती है। इसका अर्थ ये हुवा कि ०१ से ३१ जनवरी के बीच में किसी भी दिन मकर सङ्क्रान्ति का होना नितान्त असम्भव है।

सबको पता है कि पहले कृष्ण पक्ष होना और उसके बाद शुक्लपक्ष होने की बात प्रकृति के विरुद्ध है, वैदिक मार्गदर्शन के भी विरुद्ध है। स्वाभाविक क्रम तो ये है कि पहले बढ़ते क्रम का शुक्ल पक्ष (पूर्णिमा तक का) हो और फिर घटतेक्रम का कृष्ण पक्ष (अमावस तक का)। परन्तु सिद्धान्त हीनता का और भी बुरा हाल ये है कि हमारे पंचाङ्गों में वर्ष शुरू होता है शुक्ल पक्ष से जबकि महीने शुरू होरहे हैं कृष्ण पक्ष से।

यही ढंग जब मलमास में सही नहीं बैठता तो मलमास के लिए अलग क्रम लिया जाता है। ऐसा इसलिए कि कृष्ण - शुक्ल पक्ष (जिसको ज्योतिष के या पंचाङ्ग की भाषा में कृष्णादि या पूर्णिमान्त कहते हैं) के क्रम से मल मास दिखाने में सङ्क्रान्ति की अड़चन आ जाती है। इसलिए वहां फिर नई तिकड़म से काम लिया जाता है। बीच का शुक्ल और उसके बाद का कृष्ण पक्ष का तो मल मास और उस मलमास से आगे का कृष्ण और और बाद का शुक्ल पक्ष शुद्ध मास। अब इस बात को उदाहरण से समझने की कोशिश करें।

पारम्परिक पंचाङ्गों में ०४ जुलाई २३ से श्रावण कृष्ण पक्ष (श्रावण मास) शुरू होता है (वास्तव में ये सिद्धान्ततया आषाढ़ कृष्ण पक्ष होना चाहिए था) और ०१ अगस्त को पूरा होता है। इस बीच में १६ जुलाई को कर्क सङ्क्रान्ति होती है। नियमतः सङ्क्रान्ति युक्त होजाने से ये मलमास नहीं हो सकता। इसी तरह ०२ अगस्त से शुरू हुवा श्रावण ३१ अगस्त को पूरा होता है और १७ अगस्त २३ को सिंह सङ्क्रान्ति होती है। नियमतः ये भी मल मास नहीं हो सकता। इसी से आधा श्रावण पहले का और आधा श्रावण बाद का लेकर मनमर्जी पूरी के जाती है। है कोई इन पंचाङ्गकारों को पूछने वाला?

वैसे भी, पारम्परिक पंचाङ्गों में १७ जुलाई को (सूर्य क्रान्ति २१ अंश १६ कला २३ विकला) ०५ बजकर २९ मिनट पर सूर्य का कर्क प्रवेश (९० अंश) दिखाया गया है। यह सब खगोलिकी की सैद्धान्तिक गणित के साथ वैषम्य में है। ९० अंश का भोगांश होने पर क्रान्ति, परम स्थिति पर होनी चाहिए। और अगर २१ अंश १६ कला २३ विकला है तो सूर्य भोगांश ११४ अंश और १२ कला के लगभग होना चाहिए। अस्तु, श्रावण का मलमास तो सर्वथा मिथ्या आरोपण है। मेरी इस बात को पंचाङ्गीय गणित के जानकार या मेरे विद्यार्थी अच्छे से समझ सकते हैं। अन्यों को थोड़ा कठिनाई रहेगी।

भारत के एकमात्र वैदिक पंचाङ्ग श्री मोहन कृत्यार्ष पत्रकम् को देखें तो पाएंगे कि वास्तव में इस संवत् का वास्तविक मलमास वैशाख में बनता है। पारम्परिक पंचाङ्गकारों से गलती हो रही है और उसका कारण है सम्पात (वसन्त तथा शरद सम्पात) और अयनों (उत्तरायण और दक्षिणायन) से सम्बद्ध, ऋतुबद्धता पूर्वक सौरसङ्क्रान्तियों नकारना। इस नकारे से ही गलत चान्द्रमासों का लिया जाना हो रहा है और इसी से समस्त भारत में लगभग सभी पारम्परिक पंचाङ्ग अशुद्ध छप रहे हैं।

शिक्षित जनता को आवश्यक है कि वे पंचाङ्गों के विषय को समझने का प्रयास करें। तभी पंचाङ्गकारों को गलत पंचाङ्ग बनाने के प्रति एक चेतना मिल पाएगी। अन्यथा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः तो चल ही रहा है, चलता भी रहेगा। धन्यवाद।

सम्पादक -श्री मोहन कृति आर्ष पत्रकम्
(एकमात्र वैदिक पंचाङ्ग)

सबसे बड़ा गुरु कौन?

(गुरु पूर्णिमा पर विशेष)

-डॉ० विवेक आर्य

आज गुरु पूर्णिमा है। हिन्दू समाज में आज के दिन तथाकथित गुरु लोगों की लाटरी लग जाती हैं। सभी तथाकथित गुरुओं के चेले अपने अपने गुरुओं के मठों, आश्रमों, गद्दियों पर पहुँच कर उनके दर्शन करने की हौड़ में लग जाते हैं। खूब दान, मान एकत्र हो जाता हैं। ऐसा लगता हैं की यह दिन गुरुओं ने अपनी प्रतिष्ठा के लिए प्रसिद्ध किया हैं। भक्तों को यह विश्वास हैं की इस दिन गुरु के दर्शन करने से उनके जीवन का कल्याण होगा। अगर ऐसा हैं तब तो इस जगत के सबसे बड़े गुरु के दर्शन करने से सबसे अधिक लाभ होना चाहिए। मगर शायद ही किसी भक्त ने यह सोचा होगा की इस जगत का सबसे बड़ा गुरु कौन हैं? इस प्रश्न का उत्तर हमें योग दर्शन में मिलता हैं।

स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।।

(योगदर्शन : १-२६)

वह परमेश्वर कालद्वारा नष्ट न होने के कारण पूर्व ऋषि-महर्षियों का भी गुरु है।

अर्थात ईश्वर गुरुओं का भी गुरु है। अब दूसरी शंका यह आती है कि क्या सबसे बड़े गुरु को केवल गुरु पूर्णिमा के दिन स्मरण करना चाहिए? इसका स्पष्ट उत्तर है कि नहीं ईश्वर को सदैव स्मरण रखना चाहिए और स्मरण रखते हुए ही सभी कर्म करने चाहिए। अगर हर व्यक्ति सर्वव्यापक एवं निराकार ईश्वर को मानने लगे तो कोई भी व्यक्ति पाप कर्म में लिप्त न होगा। इसलिए धर्म शास्त्रों में ईश्वर को अपने हृदय में मानने एवं उनकी उपासना करने का विधान हैं।

ईश्वर और मानवीय गुरु में सम्बन्ध को लेकर कबीर दास के दोहे को प्रसिद्द किया जा रहा है।

गुरु गोविंद दोनों खड़े, काके लागूं पाँय । बलिहारी गुरु आपनो, गोविंद दियो मिलाय।।

गुरुडम कि दुकान चलाने वाले कुछ अज्ञानी लोगों ने कबीर के इस दोहे का नाम लेकर यह कहना आरम्भ कर दिया हैं कि ईश्वर से बड़ा गुरु है क्यूंकि गुरु ईश्वर तक पहुँचने का मार्ग बताता हैं। एक सरल से उदाहरण को लेकर इस शंका को समझने का प्रयास करते हैं। मान लीजिये की मैं भारत के राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी से मिलने के लिये राष्ट्रपति भवन गया। राष्ट्रपति भवन का एक कर्मचारी मुझे उनके पास मिलवाने के लिए ले गया। अब यह बताओ कि राष्ट्रपति बड़ा या उनसे मिलवाने वाला कर्मचारी बड़ा है? आप कहेंगे की निश्चित रूप से राष्ट्रपति कर्मचारी से कही बड़ा हैं, राष्ट्रपति के समक्ष तो उस कर्मचारी की कोई बिसात ही नहीं हैं। यही अंतर ईश्वर और ईश्वर प्राप्ति का मार्ग बताने वाले गुरु में हैं। हिन्दू समाज के विभिन्न मतों में गुरुडम कि दुकान को बढ़ावा देने के लिए गुरु की महिमा को ईश्वर से अधिक बताना अज्ञानता का बोधक हैं। इससे अंध विश्वास और पाखंड को बढ़ावा मिलता हैं।

अंत में यह भजन लिखना चाहता हूँ।

पाया गुरु मन्त्र बृहस्पति से, फिर अन्य गुरु से करना क्या।
की माँग विश्वपति अधिपति से, फिर और किसी से करना क्या।।

वरणीय वरुण प्रभु वरुपति हों, अर्यमा न्याय के अधिपति हों।
हमको परमेश ईशता दो, तुम इन्द्र हमारे धनपति हों।।

की याचना इन्द्र धनपति से, फिर दर दर हमें भटकना क्या।
की माँग विश्वपति अधिपति से, फिर और किसी से करना क्या।।

अत्यन्त पराक्रम बलपति हो, तुम वेद बृहस्पति श्रुतिपति हो।
तन मानस का बल हमको दो, तुम विष्णु व्याप्त जग वसुपति हो।।

की सन्धि शौर्य के सतपति से, फिर हमें शत्रु से डरना क्या।
की माँग विश्वपति अधिपति से, फिर और किसी से करना क्या।।

प्रिय सखा सुमंगल उन्नति हो, हर समय तुम्हारी संगति हो।
बन मित्र मधुरता अपनी दो, सुख वैभव बल की सम्पति दो।।

मित्रता विष्णु प्रिय जगपति से, फिर पलपल हमें तरसना क्या।
की माँग विश्वपति अधिपति से, फिर और किसी से करना क्या।।

-पं. देवनारायण भारद्वाज
रचित गीत स्तुति का प्रथम प्रकाश

डाकू आर्य सन्यासी बन गया

सन १९७६ में पाणिनि कन्या गुरुकुल, बनारस की आचार्या प्रज्ञा देवी को बोलथरा रोड,जिला आजमगढ़,उत्तर प्रदेश के एक स्वर्णकार ने अपने ग्राम में चतुर्वेद परायण यज्ञ संपन्न करने हेतु आमंत्रित किया था। प्रज्ञा देवी के साथ सुप्रसिद्ध भजन उपदेशक श्री ब्रजपाल जी कर्मठ एवं पंडित ओम प्रकाश जी वर्मा को भी आमंत्रित किया गया था। कार्यक्रम के अंतिम दिन एक विशेष घटना घटित हुई। उस दिन कार्यक्रम में एक डाकू कंधे पर बन्दुक टांगे हुए वहां पर आकर बैठ गया। वहां के मूल निवासियों ने तो उसे पहचान लिया पर उपदेशक विद्वान उसे न पहचान पायें। इस अवसर पर पंडित ओमप्रकाश जी ने संयोगवश पानीपत हरियाणा में घटित एक घटना का वर्णन किया जिसमे पंडित गणपति शर्मा एक बार आर्यसमाज के उत्सव में उपदेश देते हुए कह रहे थे कि मनुष्य को अपने किये हुए कर्मों का फल भोगना ही पड़ता हैं। शुभकर्मों का फल शुभ और अशुभ कर्मों का फल अशुभ ही भोगना पड़ता हैं। ईश्वर किसी के किये पापों का फल अवश्य देता हैं। किसी भी व्यक्ति के पाप क्षमा नहीं करता। सत्संग तथा स्वाध्याय से ईश्वर की न्याय व्यवस्था को भली भांति समझकर यदि कोई मनुष्य पापकर्म करना छोड़ देता हैं तो भविष्य में पापों से मुक्त हो जाता हैं। परन्तु पूर्व में कर चुके पापों के फल से मुक्त नहीं हो सकता हैं उसे उसका फल भोगना ही पड़ता हैं। उस प्रवचन को सुनने वालों में उस दिन श्रोताओं में मुगला नामक एक डाकू भी था। उस पर पंडित गणपति शर्मा के उपदेशों का अद्भुत प्रभाव पड़ा व उसने डाके डालने बंद करके शुद्ध व पवित्र जीवन अपना लिया। पं जी के बाद महाविदुषि प्रज्ञादेवी ने मन्त्रों की व्याख्या करते हुए पापों से बचने व ईश्वर की शुद्ध न्याय व्यवस्था को समझकर सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी व प्रभावशाली शैली में उन्होंने कहा अवश्यमेव भोक्तव्यम कृतं कर्म शुभ अशुभम अर्थात कृत पापों के फल भोगने से आज तक कोई जीव बचा नहीं तथा न ही भविष्य में कोई बच सकेगा।

प्रज्ञादेवी जी के उपदेश के खत्म होने तक सभा में अनेक श्रोतागण वहां से डाकू के भय से चले गए परन्तु वह डाकू कार्यकर्म खत्म होने पर ही गया। उसके जाने के बाद आयोजकों ने बताया की यहाँ जो बंदूकधारी व्यक्ति आज आया था वह इस क्षेत्र का प्रसिद्द सुदामा नामक डाकू था।

कुछ दिनों के पश्चात वही सुदामा बहन प्रज्ञादेवी आचार्या जी के गुरुकुल के प्रवेश द्वार पर आकर खड़ा हो गया व पुकारने लगा बाई जी! बाई जी ! गुरुकुल का द्वार खोला गया तो प्रज्ञा देवी जी ने पूछा कहो- क्या काम हैं? कहाँ से आये हो? कौन हो तुम? वह व्यक्ति प्रज्ञादेवी जी के चरणों में प्रणाम करके बोला'- मैं सुदामा डाकू हूँ। मैंने बोलथरा रोड में आपके कार्यकर्म को देखा-सुना था। मैं अपने घर में भी अब हवन कराना चाहता हूँ व उन पंडित जी से मिलना व उनके उपदेश भी सुनना चाहता हूँ, जिन्होंने कर्मों का फल भोगना ही पड़ेगा, यह बताया था। आपके उपदेश का भी मुझ पर बहुत प्रभाव पड़ा था। प्रज्ञा देवी ने पूछा की आप कब यह कार्य करवाना चाहते हैं? सुदामा ने कहाँ- आज से ६-७ मास बाद, मई या जून में।

प्रज्ञा जी ने स्वीकृति दे दी। अपने घर लौटकर सुदामा ने अपने खेतों में हल चलाया व गायत्री मंत्र का प्रतिदिन पाठ करने लगा। तब नवम्बर का महिना चल रहा था. गेहूं की फसल उन्हीं दिनों में बोई जाती हैं। सुदामा ने डाके डालने त्यागकर इसी काम में स्वयं को व्यस्त कर लिया। अप्रैल मास में जब फसल घर आ गयी तो निश्चित दिनों में मई में विद्वान उसके घर पर पहुँच गए। वहां दोनों समय प्रतिदिन हवन और उपदेश तथा भजनों का कार्यक्रम भी चला। भोजन में रोटी के साथ केवल घिया (लौकी)ही हर रोज दी जाती थी। रात को दूध जरुर दिया जाता था। ओमप्रकाश वर्मा जी ने सुदामा से पूछा कि दोनों समय घिया खिलाने के पीछे क्या रहस्य हैं। सुदामा ने कहाँ की मेरे घर में जो भी सामान हैं वह सब डाके डालकर ही प्राप्त किया गया हैं। उसे अपने उपदेशकों को खिलाने का मेरा मन आज्ञा नहीं दे रहा हैं। मेरी अपनी मेहनत से खेतों में उपजाया हुआ गेहू और घिया से विद्वानों का सत्कार किया हैं और मेरी गौ माता भी अभी ही ब्याही हैं जिसका दूध आपको पिलाता हूँ।

यज्ञ के कार्यक्रम के संपन्न होने के पश्चात सुदामा ने विद्वानों को दक्षिणा देनी चाही तो विद्वानों ने कहाँ कि सुदामा जी आपको पाकर हम धन्य हो गए हैं। आप आर्य बने यहीं हमारे लिए दक्षिणा हैं। सुदामा ने यह कह कर कि मैंने सुना हैं की बिना दक्षिणा के हवन आदि व्यर्थ हैं इसलिए विद्वानों को दक्षिणा अवश्य दी। कुछ दिनों बाद सुदामा डाकू वाराणसी में कुटिया बनाकर अगले कुछ वर्षों तक प्रज्ञा देवी से संस्कृत सीखता रहा। कालांतर में उसने सन्यास ग्रहण कर स्वामी देवानंद सरस्वती के नाम से प्रसिद्धि पाई।

इतिहास साक्षी हैं बुराई के मार्ग पर चल रहे अनेक व्यक्ति सत्य मार्ग पर चल रही श्रेष्ठ आर्य आत्माओं के संसर्ग से न केवल दोषों से मुक्त हुए अपितु अनेकों के मार्गदर्शक भी बने. स्वामी श्रद्धानंद ने जब गुरुकुल कांगरी की स्थापना करी तो एक समय कुछ डाकू लूटपाट के इरादे से गुरुकुल में आ गए थे। स्वामी श्रद्धानंद ने अत्यंत दिलेरी से गुरुकुल का उद्देश्य उन्हें समझाया तो वे न केवल गुरुकुल को बिना हानि पहुंचाए वापिस चले गए अपितु गुरुकुल को दान भी देकर गए थे।

स्वामी दर्शानानद जी महाराज के उपदेशों को सुनकर पीरु सिंह नामक डाकू ने हिंसा का परित्याग इसी प्रकार कर दिया था और कालांतर में वैदिक धर्म के प्रचार प्रसार के लिए गुरुकुल मतिंडू की स्थापना की थी।

इसी प्रकार की घटनाये पंडित लेखराम, भाई परमानन्द जी के जीवन में भी सुनने को मिलती हैं।

इस लेख का मुख्य उद्देश्य यह सन्देश देना हैं की मनुष्य ने अपने जीवन में चाहे पूर्व में कितने भी अशुभ कर्म किये हो परन्तु जब भी उसे श्रेष्ठ मार्ग ग्रहण करने का अवसर मिले तो उसे तत्काल उस मार्ग को ग्रहण कर लेना चाहिए।

साभार-सोशल मीडिया

पृष्ठ १ का शेष.....

ऋषि सनत सुजात से इस संबंध में परामर्श लीजिए। धृतराष्ट्र ने ऋषि सनत सुजात से परामर्श लिया तो उन्होंने धृतराष्ट्र को बहुत सी बातें बतायीं तथा एक विशेष बात बताई कि बहुत से विद्वान मानते हैं कि अकर्मणा मृत्युः अकर्मण्यता कर्मशील ना होना मृत्यु है, किंतु मैं ऐसा मानता हूं कि परमादो वै मृत्युः प्रमाद लापरवाही करना समाधि के साधनों की इच्छा ना करना भूल जाना मृत्यु है। प्रत्येक व्यक्ति में प्रमाद भरा हुआ है। आध्यात्मिक स्तर पर भी बहुत प्रमाद है जहां हर्ष नहीं करना है वहां भी हर्ष का होना प्रमाद है। उद्देश्य के प्रति जागरूक न रहना प्रमाद है, किसी संस्था आश्रम अथवा गुरुकुल आदि में रहने से आधा काम तो हो गया, किंतु आधा काम हमें स्वयं करना होगा। वहां के नियमों का पालन करना हमारा कर्तव्य है जिसे हमें करना है। यदि हम असावधान रहते हैं तो यह हमारी न्यूनता है। यदि वहां का नियम है कि ४ बजे उठकर मंत्र पाठ में जाना है तो हमें उसका पालन करना है। घंटी बजने पर भी हमारी नींद नहीं खुलती है, तो हमें किसी साथी की सहायता लेनी चाहिए। कि वह हमें उठा दे, यदि हम नहीं उठते हैं तो हमारी देखा देखी अन्य लोग भी प्रमाद करेंगे। नियम भंग होगा, उसका पाप हमें लगेगा। मौन के समय हम बोलते हैं तथा हमें देखकर अन्य लोग भी वार्तालाप करते हैं तो उसका पाप भी हमको लगेगा। व्यायाम करना चाहिए, नहीं किया यह प्रमाद है। शारीरिक परिश्रम करें अथवा व्यायाम करें नहीं तो प्रमाद माना जाएगा। प्रमाद बहुत बड़ा दोष है धृतराष्ट्र को ऋषि सनत सुजात समझा रहे हैं की प्रमाद न करना अमरत्व है, प्रमाद करना मृत्यु है, लगभग सभी लोग समय का दुरुपयोग अनुपयोग करते हैं। उस समय का सदुपयोग करके हम बहुत कुछ कर सकते हैं उपासना के समय आसन लगाकर बैठना चाहिए पूरा प्रयत्न करेंगे तभी सफलता मिलेगी संध्या को शब्द अर्थ तथा भावना के रूप में हृदयंगम करके उपासना करेंगे तो उपासना बहुत अच्छी होगी। किंतु प्रमाद वश हम करते नहीं हैं जब शारीरिक रूप से प्रमाद करेंगे तो वाचनिक और मानसिक स्तर पर प्रमाद को कैसे रोक पाएंगे। अपना निरीक्षण करके देखें कि मुझमें प्रमाद है अथवा नहीं। प्रमाद को हम एक द्रष्टांत से समझते हैं गोबर का कीड़ा मुंह में गोबर की गोली लेकर घूम रहा था उसके पास एक भंवरे ने आकर कहा कि तुम क्या इस गंदे गोबर की गोली को मुंह में डाले घूम रहे हो, चलो मेरे साथ मैं तुम्हें अच्छे-अच्छे पुष्पों की सुगंध के पास ले चलता हूं। गोबर के कीड़े ने कहा कि मैं तो उड़ नहीं पाता हूं, भंवरे ने कहा कि आओ मेरी पीठ पर मैं लेकर चलता हूँ। भंवरा उसे पीठ पर बैठाकर विभिन्न प्रकार के फूलों के पास ले जाकर पूछता है कि सुगंध आई तब कीड़े ने कहा नहीं आई। कारण यह था कि उसके पहले से ही गोबर की गोली मुंह में रखी हुई थी तो सुगंध कैसे आती यह द्रष्टांत है, द्रष्टांत यह है कि उपदेश सुनकर भी कल्याण नहीं होगा। क्योंकि जैसे कीड़ा मुंह में गोबर की गोली रखता है वैसे ही यह व्यक्ति अपनी दुष्प्रवृत्तियों को लेकर बैठता है जैसे वाटरप्रूफ बुलेट प्रूफ वैसे ही यह सत्संग प्रूफ हो जाता है। तब कल्याण संभव नहीं है विशेष लाभ नहीं होगा। एक घंटे उपासना में बैठते हैं यदि पुरुषार्थ करेंगे तो योग्यता बढ़ती जाएगी यदि प्रमाद करेंगे तो कल्याण संभव नहीं है।

व्यास जी ने एक विशेष बात बताई है की शास्त्र अनुमान प्रमाण आचार्य जी उपदेश इनसे बोध सत्य स्वरूप ही होता है क्योंकि इनमें इतना बल है सत्य को बताने की क्षमता है प्रश्न यह है कि शास्त्र अनुमान प्रमाण आचार्य उपदेश में इतना बल है तो व्यक्ति चलता क्यों नहीं है। व्यास जी ने कहा कि इनमें सत्य तो है किंतु स्वयं प्रयोग नहीं कर करेंगे-परीक्षण करके नहीं देखेंगे तो सत्य का अनुभव नहीं होगा।

आसन के स्थिर हो जाने से द्वन्द्व अभिघात नहीं करेंगे अभ्यास करने पर छः महीने में परिणाम प्राप्त होंगे। नियमों को पूरा पूरा पालन करना होगा। एक व्यक्ति नियम भंग करता है तो अन्य व्यक्ति भी भंग करने लगते हैं। वाणी का संयम करना है आवश्यकता होने पर भी योगाभ्यासी को सत्य ही बोलना है। वाणी, मन, शरीर किसी भी स्तर पर प्रमाद नहीं करना है। जब मन के स्तर पर प्रमाद को छोड़ेंगे तब वाणी तथा शरीर के स्तर पर भी प्रमाद छूट जाता है। हमें सचेष्ट होकर कार्यों को करना है प्रमाद नहीं करना है।

चलभाष-९४५१२४५००९

आर्य-द्रविड़ विवाद के जन्मदाता कौन?

-स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती

भारत में फूट के लिए सबसे अधिक उत्तरदाता विदेशी शासन था, यद्यपि यह भी एक गोरखधन्धा है कि एकता के लिए भी सबसे अधिक उत्तरदाता विदेशी शासन था।

हमारी फूट के कारण विदेशी शासन हम पर आ धमका। देश के जागरूक नेताओं की बुद्धिमत्ता से एकता की आग प्रज्ज्वलित हुई। विदेशी शासक आग में ईधन, विदेशी अत्याचार घी का काम देते रहे। अन्त में विदेशी शासकों को भस्म होने से पूर्व ही भागना पड़ा। परन्तु अब विदेशी फूट डालने वालों का स्थान स्वदेशी स्वार्थियों ने ले लिया।

हिन्दी के परम समर्थक तथा कम्युनिस्टों के परम शत्रु राज गोपालाचारी, अंग्रेजी के गिरते हुए दासतामय भवन के सबसे बड़े स्तम्भ बन गये।

जो प्रोफेसर अंग्रेजी इतिहासकारों के आसनों पर आसीन हुये वही 'आर्य' तथा 'द्रविड़' शब्दों के अनर्गल अर्थों के प्रयोग को भारत की छोटी से छोटी पाठशाला तक पहुंचाने में सबसे बड़े सहायक बन गये।

मैं दोनों भुजा उठाकर इस अनर्थ के विरुद्ध शंखनाद करना चाहता हूँ। मेरा कहना है कि सारे संस्कृत साहित्य में एक पंक्ति भी ऐसी नहीं जिससे आर्य नाम की नस्ल (Race) का अर्थ निकलता हों। इस शब्द का सम्बन्ध (१) या तो चरित्र से है (२) या भाषा से (३) या उस भाषा को बोलने वाले लोगों से (४) या उस देश से जहाँ इस प्रकार के चरित्र और भाषा वाले मनुष्य बसते हैं इसलिए किसी गोरे रंग वाली अथवा लम्बी नाक वाली जाति से इस शब्द का कोई दूर का भी सम्बन्ध नहीं है इसी प्रकार द्रविड़ शब्द ब्राह्मणों के दश कुलों में से पांच कुलों में होता है जिनमें शंकराचार्य जैसे ब्राह्मण पैदा हुए।

अथवा मनुस्मृति के उपलभ्यमान संस्करण के अनुसार द्रविड उन क्षत्रिय जातियों में से एक है जो 'आचारस्य वर्जनात् अथवा ब्राह्मणनामदर्शनात् वृषलत्स्वम् गताः।' क्षत्रियोचित आचार छोड़ देने तथा ब्राह्मणों के साथ सम्पर्क नष्ट हो जाने के कारण शूद्र कहलाये। किन्तु काले रंग तथा चिपटी नाक का द्रविड़ शब्द से कोई दूर का भी सम्बन्ध नहीं।

आर्य और द्रविड़ शब्द पश्चिम की दृष्टि में -

मैकडानल की वैदिक रीडर में जो कि आज भारत के सभी विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों में पढ़ाई जाती है लिखा है :-

"The historical data of the hymuns show that the Indo & Aryans were still engaged in war with the aborigines] many victories over these forces being mentioned-that they were still moving forward as conquerors is indicated by references to reverse as obstacles to advances to-"

"They were conscious of religious and racial unity] contrasting the aborigines with themselves by calling them non&sacrificers] and unbelievers as well as black skin's and the Das's colour' as opposed to the Aryan colours-

'ऋग्वेद की ऋचाओं से प्राप्त ऐतिहासिक सामग्री यह दिखाती है कि इण्डो-आर्यन् लोग सिन्धु पार करके फिर भी भारत के आदिवासियों के साथ युद्ध में लगे हुये थे इन शत्रुओं पर उनकी कई विजयों का ऋग्वेद में वर्णन है अभी भी विजेता के दल आगे बढ़ रहे थे। यह इस बात से सूचित होता है कि वे कई स्थानों पर नदियों का अपने अभि प्रयाण के मार्ग में बाधा के रूप में वर्णन करते हैं।'

''उन्हें यह अनुभव था कि उनमें जातिगत तथा धार्मिक एकता है। वे आदिवासियों को अपनी तुलना में यज्ञ हीन, विश्वास हीन, काली चमड़ी वाले, दास रंग वाले तथा अपने आपको आर्य रंग वाले कहते है''

यह सारा का सारा ही आद्योपान्त अनर्गल प्रलाप है। सारे ऋग्वेद में कोई मनुष्य एक शब्द भी ऐसा दिखा सकता है क्या जिससे यह सिद्ध होता है कि काली चमड़ी वाले आदिवासी थे और आर्य रङ्ग वाले किसी और देश के निवासी थे।

प्रथम तो वेद में काली चमड़ी वाले (कृष्णत्वचः) यह शब्द ही कहीं उपलब्ध नहीं और ना ही कहीं गौरवचः ऐसा शब्द है।

हाँ, 'दास वर्णम्' 'आर्य वर्णम्' यह दो शब्द हैं जिनकी दुर्गति करके काले-गोरे दो दल कल्पना किये गए है। हालाँकि चारों वेदों में विशेष कर ऋग्वेद में कोई एक पंक्ति भी ऐसी नहीं है जिससे यह सिद्ध होता हो कि 'आर्य वर्णम्' इस देश में बाहर से आए, और 'दास वर्णम्' यहां के मूल निवासी (Aborigines) थे।

यदि इनके युद्ध का वर्णन है, तो वह युद्ध क्या एक ही देश के रहने वाले दो दलों में नहीं हो सकता, इन दोनों में से एक दल बाहर से आया था और दूसरा आदिवासी दल था इस कल्पना का एक ही और केवल मात्र एक उद्देश्य था, भारत में पग-पग पर फूट फैलाने वाले तथा भारत के एकता के परम शत्रु अंग्रेजी शासकों की तथा वैदिक धर्म द्रोही पादरियों की दुष्टता है।

अब अंग्रेज चले गए। क्या अब भी हमारे देशवासियों की आंखें खुलेंगी।

आर्य और द्रविड़ का असली अर्थ -

अब जरा आर्यवर्ण तथा दासवर्ण इन शब्दों की परीक्षा करलें।

वर्ण शब्द का अर्थ इस प्रसंग में है ही नहीं। धातु-पाठ में रंग-वांची वर्ण वाची शब्द के लिए वर्ण धातु पृथक ही दी गई है परन्तु निरुक्तकार ने इस वर्ण शब्द की व्यत्युत्ति वृ धातु से बताई है। वर्णो वृणोतेः (निरुक्त)।

ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य यह तीन आर्य वर्ण हैं, क्योंकि सत्यद्वारा असत्य नाश, बल द्वारा अन्याय का नाश धन द्वारा दारिद्रय का नाश यह तीन व्रत हैं।

इनमें से जो एक व्रत का वरण अर्थात् चुनाव कर लेता है उसके 'वर्णिक' को जीवन अपने वर्ण की मर्यादानुसार अत्यन्त कठोर नाप तोल में बंध जाता है इसलिये वह व्रत आर्य वर्ण कहलाता है।

जो अपने आप को सब प्रकार की शक्तियों से क्षीण पाता है। परन्तु स्वेच्छा पूर्वक ईर्षा-रहित होकर लोक कल्याणार्थ किसी व्रत वाले की सेवा का व्रत ले लेता है वह दास वर्ण का कहलाता है इसलिये शूद्रों के दासन्त नाम कहे हैं। जो व्रतहीन हैं वह दास नहीं, दस्यु हैं।

उन्हें अव्रताः कहकर व्रत वाले उनसे युद्ध करें यह बिलकुल उचित ही है। यह व्रतधारियों का व्रतहीनों से, हराम खोरों का श्रम शीलों से संग्राम सदा से चला आया है और सदा रहेगा। यह दोनों ही सदा से धरती पर रहे हैं इसलिए दोनों ही धरती के आदिवासी, मध्यवासी, तथा अन्तवासी हैं।

अस्तु Aborigines की यह कल्पना बिलकुल निराधार है। इसका वैदिक वाङ्मय तो क्या सारे संस्कृत साहित्य में वर्णन नहीं ।

आर्य शब्द कैसे बना -

अब देखना है कि आर्य शब्द यदि जाति विशेष का वाचक नहीं तो यह किसका वाचक है।

इसके लिये इसकी व्युत्पत्ति को देखना चाहिए।

यह शब्द 'ऋ गतौ' (Ri to move) इस धातु से बना है, परन्तु ऋ धातु का अर्थ गति है इतना तो व्याकरण से ज्ञात हो गया अब निरुक्त प्रक्रिया से देखना चाहिये कि ऋ धातु का अर्थ किस प्रकार की गति है। इसके लिए दो शब्दों को ले लीजिए। एक ऋतु, दूसरा अनऋतु। ऋतु का अर्थ है नपा हुआ समय। ग्रीष्म ऋतु= गरमी के लिये नियत, नपा हुआ समय, वर्षा ऋतु = जिसमें वर्षा होती है वह नपा हुआ समय, शरद ऋतु=जिसमें सरदी पड़े वह नपा हुआ समय, बसन्त ऋतु=जिसमें सरदी से धुन्ध कोहरा आदि आकाश के आच्छादक वृत्तोका अन्त हो और समशीतोष्ण अवस्था हो वह नपा हुआ समय, इस प्रकार 'ऋगतौ' का अर्थ हुआ ऋ= मितगतौ अर्थात् नाप के साथ चलना।

इसीलिये जो पदार्थ जैसा है उसके सम्बन्ध में अन्यूना= नातिरिक्त, ठीक नपा तुला ज्ञान कहलाता है= ऋतु इसके विपरीत अन् ऋतु। इसका बिलकुल संदेह नाशक प्रमाण कीजिये -

अर्वन्तोमित द्रवः (यजु १,)

वे घोड़े जो इतने सधे हों कि दौड़ते समय भी उनके पग नाप तौल के साथ उठे परिमित हों, ठीक नपे तुले हों वे अर्वन्तः कहलाते हैं। इसी ऋधातु से आर्य बना है। इस शब्द के सम्बन्ध में पाणिनि का सूत्र है अर्यः स्वामि वैश्योंः आर्य शब्द के दो अर्थ हैं एक स्वामी दूसरा वैश्य।

इस पर योरोपियन विद्वानों की बाल लीला देखिए।

उनका कहना है यह शब्द ऋधातु से बना है जिसका अर्थ है। खेती करना यह 'ऋ कृषौ' धातु उन्होंने कहाँ से ढूढ़ निकाली, यह अकाण्ड ताण्डव भी देखिये। आर्य का अर्थ है स्वामी अथवा वैश्य। वैश्य के तीन कर्म हैं

(१) कृषि (२) गोपालन (३) वाणिज्य। सो क्योकि आर्य का अर्थ है वैश्य और वैश्य का कर्म है कृषि इसलिए ऋधातु का अर्थ है। खेती करना।

बलिहारी है इस सीनाजोरी की, क्यों जी, वैश्य के तीन कर्मों में व्यापार और गोपालन को छोड़कर आपने खेती को ही क्यों चुना? इसका कारण उनसे ही सुनिये।

अंग्रेजी भाषा में एक शब्द है Arable Land अर्थात् कृषि योग्य भूमि। यह शब्द जिस भाषा से आया है उसका अर्थ खेती करना है इसलिए संस्कृत की ऋधातु का अर्थ खेती करना सिद्ध हुआ, यह तो ऐसी ही बात है कि हिन्दी में लुकना का अर्थ छिप जाना है। इसलिए Look at this room का अर्थ, इस घर में छिप जाओ, क्योंकि हिन्दी भाषा में धी का बेटी है इसलिए वेद में भी धी का अर्थ बेटी हुआ।

सुनिये लाल बुझक्कड जी। (१) स्वामी (२) कृषि (३) गोपालन (४) व्यापार। इन चारों में समान है, वह है नाप तौल के साथ व्यवहार, स्वामी से भृत्य जो वेतन पाता है वह नाप तोल के बल पर पाता है।

'खेती के योग्य भूमि को नापना पड़ता है क्योंकि उस पर लगान लगता है, इसीलिए अंग्रेजी में भी कृषि योग्य भूमि Arable Land कहलाती है।

गोपालन करने वाला दूध नापता है क्योंकि उस पर उसकी आजीविका निर्भर है व्यापारी के नाप-तौल का तो प्रश्न ही नहीं उठता वहां तो सारा काम ही नाप तौल का है। वैश्य हलवाई से कहिये लालाजी लड्डू खाने है तुरन्त आपका स्वागत करके आपको आसन पर बैठाएगा और अति मधुरता पूर्वक पूछेगा कितने तौलू यह कितने वैश्य कर्म का आधार है, इसलिए स्वामी और वैश्य दोनों आर्य कहलाते हैं। स्वामियों का स्वामी परमेश्वर हैं, आर्य का अर्थ है ईश्वर का पुत्र अर्थात् स्वामी का पुत्र अर्थात् परमेश्वर का पुत्र। परमेश्वर का गुण है न्यायपूर्वक नियमानुसार नाप-तौल कर कर्मों का फल देना।

जो मनुष्य इसी प्रकार सबके साथ प्रीति पूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य व्यवहार करता है वही भगवान के गुणों को धारण करने के कारण उसका सच्चा सपूत है। परमात्मा का एकलौता बेटा कोई नहीं। सृष्टि के आदि से आज तक जिन्होंने नाप-तौल युक्त व्यवहार किया वे आर्य कहलाए और जो करेंगे वे कहलाएगे चाहे किसी देश जाति अथवा सम्प्रदाय में उत्पन्न हुये हैं। यह है आर्य शब्द का अर्थ। जिनका जीवन सत्य रक्षा, न्याय-रक्षा अथवा धनहीन रक्षा के व्रतों से नपा-तुला हो वे आर्य वर्ग के लोग कहलायेंगे और उनका चुनाव किया हुआ व्रत आर्य वर्ण कहलाएगा।

अब बताइए कि इसमें गोरा रंग लम्बी नाक अथवा भारत के बाहर के किसी देश से आना किस प्रकार आ घुसा, जिन धूर्त शिरोमणि लोगों ने इस राष्ट्र की एकता के विध्वंस के लिये इस पवित्र शब्द की यह दुर्दशा की है उनसे पग-पग पर प्रतिक्षण लड़ना और तब तक, दम न लेना जब तक यह अविद्यान्धकार धरती से विदा न हो हर सत्य-प्रेमी का परम कर्तव्य है और राष्ट्र हितैषियों के लिये तो यह जीवन-मरण का प्रश्न है। क्योंकि इसी पर राष्ट्र की एकता निर्भर है।

(आर्य संसार १९६५ से संकलित)

पंजी०सं० आर.एन.आई.-२२४१/५७ -आर्यमित्र ०६ एवं १३ जुलाई, २०२३ पोस्टल रजि.जी.पी.ओ. लखनऊ/एन.पी.-१४/२०१६-२१ एक प्रति ₹ ५.००

आर्य मित्र

नारायण स्वामी भवन, ५-मीराबाई मार्ग, लखनऊ दूर./फैक्सः ०५२२-२२८६३२८
प्रधान-०६४१२६७८५७१, मंत्री-०६४१५३६५५७६, सम्पादक-६४५१८८१६७७
ई.मेल-apsabhaup86@gmail.com

क्या सांख्यकार कपिल मुनि अनीश्वरवादी थे?

लेखक- स्वामी धर्मानन्द

माननीय डॉ० अम्बेदकरजी से गत २७ फर्वरी को मेरी जब उनकी कोठी पर बातचीत हुई तो उन्होंने यह भी कहा कि सांख्यदर्शन में ईश्वरवाद का खण्डन किया गया है। यही बात अन्य भी अनेक लेखकों ने लिखी है किन्तु वस्तुतः यह अशुद्ध है। सांख्य दर्शन में ईश्वर के सृष्टि के उपादान कारणत्व का निम्न सूत्रों द्वारा खण्डन किया गया है उसका यह अर्थ समझ लेना कि यह ईश्वरवाद मात्र का खण्डन है, अशुद्ध है। उदाहरणार्थ निम्न सूत्रों को देखिए-

तद्योगेऽपि न नित्य मुक्तः।। सांख्य ५/७

अर्थात् यदि ईश्वर को इस सृष्टि का उपादान कारण माना जाएगा तो ईश्वर नित्य मुक्त नहीं समझा जाएगा, क्योंकि उपादान कारण मानने से उसमें रागादि की प्रवृत्ति माननी पड़ेगी जो नित्य मुक्त में नहीं हो सकती।

प्रधान शक्ति योगाच्चेत् संगापत्तिः।। सांख्य ५/८

अर्थात् यदि ईश्वर और प्रकृति की शक्ति का योग मान लिया जाए तो संग की प्राप्ति से अन्योन्याश्रय होगा। ईश्वर को किसी आश्रय की आवश्यकता नहीं।

सत्तामात्राच्चेत् सर्वकृश्वर्यम्।। सांख्य ५/९

अर्थात् यदि ईश्वर को इस जगत् का उपादान कारण माना जाए तो ईश्वर में गुण (सर्वज्ञादि) हैं वे इस जगत् में भी होने चाहिये परन्तु ऐसा देखने में नहीं आता। इसलिये ईश्वर इस सृष्टि का उपादान कारण नहीं, निमित्त कारण मात्र है।

प्रमाणाभावान्न तत्सिद्धिः।। सांख्य ५/१०

प्रत्यक्ष प्रमाण के न होने से ईश्वर को जगत् का उपादान कारण नहीं किया जा सकता।

सम्बन्धाभावान्नानुमानम्।। सांख्य ५/११

अर्थात् अनुमान प्रमाण द्वारा भी सिद्ध नहीं किया जा सकता कि ईश्वर जगत् का उपादान कारण है क्योंकि बिना प्रयोजन के कोई कार्य नहीं होता और ईश्वर में प्रयोजन का अभाव है। ऐसी अवस्था में ईश्वर को जगत् का उपादान कारण नहीं माना जा सकता।

श्रुतिरपि प्रधानकार्यत्वस्य।। सांख्य ५/१२

अर्थात् श्रुति भी प्रधान व प्रकृति से सृष्टि का होना मानती है।

अजामेकां लोहित शुक्ल कृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां स्वरूपाः।
अजोह्येको जुषमाणोऽनु शेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः।।

इत्यादि वचनों में प्रकृति को ही जगत् का उपादान कारण बताया गया है न कि परमेश्वर को।

सांख्यशास्त्र में ईश्वर की सत्ता के प्रतिपादक सूत्र उपर्युक्त सूत्रों के आधार पर किसी को यह भ्रम न हो जाए कि सांख्यदर्शन में ईश्वर के अस्तित्व का खण्डन किया गया है निम्नलिखित सूत्रों का निर्देश करना हमें प्रसङ्ग वश आवश्यक प्रतीत होता है।

अकार्यत्वेऽपितद् योगः पारवश्यात्।। सांख्य ३/५५

प्रश्न यह है कि प्रकृति को सृष्टि का उपादान कारण क्यों माना गया है? इसका उत्तर इस सूत्र में दिया गया है। प्रकृति को सृष्टि का उपादान कारण इसलिये माना गया है क्योंकि वह परवश है और जो परवश होता है उसे ही काम करना पड़ता है इसलिए प्रकृति को ही सृष्टि करने का योग है।

स हि सर्ववित् सर्व कर्ता।। सांख्य ३/५६

अर्थात् (सः) वह परमेश्वर (हि) निश्चय से (सर्ववित्) सर्वज्ञ है (सर्व कर्ता) सबका कर्ता है। प्रकृति तो इस सृष्टि का उपादान कारण है और जो परमात्मा सर्वज्ञ है वह सबका नैमित्तिक कारण है।

ईदृशेश्वर सिद्धिः सिद्धा।। सांख्य ३/५७

अर्थात् इसप्रकार के ईश्वर की सिद्धि सिद्ध है। इस प्रकार के सर्वज्ञ ईश्वर की सिद्धि स्पष्ट है जो इस सृष्टि का नैमित्तिक कारण है, वह सृष्टि का उपादान कारण नहीं।

ईश्वर का स्वरूप-

सांख्य दर्शन के निम्न सूत्रों में ईश्वर के स्वरूप का स्पष्ट प्रतिपादन है-

व्यावृत्तोभय रूपः।। सांख्य १/१६०

अर्थात् ईश्वर प्रकृति और पुरुष (आत्मा) से भिन्न है।

साक्षात् सम्बन्धात् साक्षित्वम्।। सांख्य १/१६१

अर्थात् प्रकृति और जीवात्मा के साथ सम्बन्ध होने से और उनका अधिपति होने से ईश्वर उनका साक्षी है- वह उनके कार्य का निरीक्षक है जैसे कि वेद में भी कहा है-

"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।।" ऋ० १/१६४/२

अर्थात् दो पक्षी (परमात्मा और जीवात्मारूपी) अनादि होने से समान प्रकृतिरूप वृक्ष पर मानो बैठे हैं। वे दोनों परस्पर मित्र हैं। उनमें से एक (जीवात्मा) वृक्ष के फल को खा रहा है और दूसरा (परमात्मा) उसे देख रहा है। साक्षी है।

नित्यमुक्तत्वम्।। सांख्य १/१६२

वह ईश्वर नित्य मुक्त है। इस विषय में योगदर्शन में कहा है- "क्लेश कर्म विपाकाशयैर परामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।।"

औदासीन्यं चेति।। सांख्य १/१६३

वह परमात्मा उदासीन वृत्तिवाला है, अर्थात् पक्षपातरहित है। वह न्यायकर्ता है और किसी का पक्ष नहीं लेता।

उपरागात् कर्तृत्वं चित्सान्निध्यात् चित्सान्निध्यात्।। सांख्य १/१६४

अर्थात् प्रकृति और जीवात्मा के साथ सम्बन्ध होने से उस परमात्मा की कर्तृत्व शक्ति का प्रसार दिखलाई देता है, अर्थात् वह ईश्वर इस सृष्टि का कर्ता, पालक, पोषक और संहारक है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सांख्यदर्शन के कर्ता कपिल मुनि अनीश्वरवादी न थे। उनके नाम से अनीश्वरवाद का समर्थन करना उनके साथ घोर अन्याय करना है। सांख्यदर्शन के यथार्थ तत्त्व को जो विशेषरूप से जानना चाहते हैं उन्हें स्वामी हरिप्रसादजी कृत 'सांख्यसूत्र वैदिक वृत्ति' और श्री गोपालजी बी.ए. कृत 'सांख्य सुधा' (प्राच्य साहित्य मण्डल १५ हनुमान् रोड नई देहली द्वारा प्रकाशित) इत्यादि पुस्तकों का अनुशीलन करना चाहिए। विस्तार भय से हम इस प्रसंगागत विषय को यहीं समाप्त करते हैं।

प्रस्तुति- प्रियांशु सेठ

सेवा में,

.....

.....

.....

श्री वेदपाल वर्मा शास्त्री जी की द्वितीय पुण्यतिथि

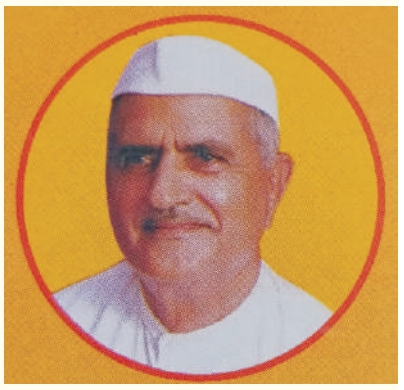

स्मृतिशेष श्री वेदपाल वर्मा शास्त्री जी की द्वितीय पुण्यतिथिः आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के पूर्व प्रतिष्ठित सदस्य व वैदिक विद्वान विद्यावाचस्पति स्वर्गीय श्री वेदपाल वर्मा शास्त्री जी की द्वितीय पुण्यतिथि का कार्यक्रम दिनाँक ८ जुलाई २०२३ को सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर उनके परिवारगण एवं समाज के सम्मानित लोगों द्वारा उनके मूल निवास शाहपुर मुजफ्फरनगर एवं उनके पल्लवपुरम्, मेरठ के निवास पर यज्ञ और सत्संग का सुंदर आयोजन हुआ तथा उनके द्वारा लिखित पुस्तक 'वेद में क्या और कहाँ' का वितरण किया गया। सभी ने उनके जीवन से प्रेरणा लेकर वैदिक मार्ग पर आगे बढ़ते रहने का संकल्प लिया।

पृष्ठ ३ का शेष.....

को बड़ा तथा संन्यासी स्वयं को सबसे बड़ा मानते हैं। लोगों में इस विषयक अनेक भ्रान्तियां हैं। प्रायः सभी संन्यासी को सबसे बड़ा मानते हैं। ऋषि दयानन्द ने इन सब भ्रान्तियों का समाधानयह कहकर किया है कि गृहस्थ आश्रम सबसे बड़ा है। सत्यार्थप्रकाश के चौथे समुल्लास के अन्त में उन्होंने प्रश्न किया है कि गृहाश्रम सब से छोटा वा बड़ा है? इसका उत्तर उन्होंने दिया है कि अपने–अपने कर्तव्यकर्मों में सब बड़े हैं। परन्तु यथा 'नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्। तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्।।1।। यथा वायुं समाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्वजन्तवः। तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्व आश्रमाः।।2।।' ऋषि ने इसके आगे मनुस्मृति के ही दो और श्लोक भी दिये हैं। वह लिखते हैं कि जैसे नदी और बड़े–बड़े नद तब तक भ्रमते ही रहते हैं जब तक समुद्र को प्राप्त नहीं होते? वैसे गृहस्थ ही के आश्रय से सब आश्रम स्थिर रहते हैं।1। विना इस आश्रम के किसी आश्रम का कोई व्यवहार सिद्ध नहीं होता।2। जिस से ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी तीन आश्रमों को दान और अन्नादि देके प्रतिदिन गृहस्थ ही धारण करता है इससे गृहस्थ ज्येष्ठाश्रम है, अर्थात् सब व्यवहारों में धुरन्धर कहाता है। इसलिये जो अक्षय मोक्ष और संसार के सुख की इच्छा करता हो वह प्रयत्न से गृहाश्रम का धारण करे। जो गृहाश्रम दुर्बलेन्द्रिय अर्थात् भीरु और निर्बल पुरुषों से धारण करने के अयोग्य है, उसको (निर्भीक एवं सबल पुरुष) अच्छे प्रकार धारण करें। ऋषि आगे लिखते हैं कि इसलिये जितना कुछ व्यवहार संसार में है उस का आधार गृहाश्रम है। जो यह गृहाश्रम न होता तो सन्तानोत्पत्ति के न होने से ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम कहां से हो सकते? जो कोई गृहाश्रम की निन्दा करता है वही निन्दनीय है और जो प्रशंसा करता है वही प्रशंसनीय है। परन्तु तभी गृहाश्रम में सुख होता है जब स्त्री पुरुष दोनों परस्पर प्रसन्न, पुरुषार्थी और सब प्रकार के व्यवहारों के ज्ञाता हों। इसलिये गृहाश्रम के सुख का मुख्य कारण ब्रह्मचर्य और स्वयंवर विवाह है।

हमने वैदिक आश्रम व्यवस्था में आश्रम का उल्लेख कर गृहस्थ आश्रम की महत्ता को वेदों के महान ऋषि दयानन्द जी के शब्दों में प्रतिपादित किया है। इससे लोगों का भ्रम निवारण होता है। आज भी लोग संन्यासियों को ही सबसे अधिक महत्व देते हैं और सभी संन्यासी यथार्थ वैराग्यवान न होकर संन्यास आश्रम की मर्यादा के अनुरूप सभी कार्य करते हुए नहीं दीखते। सभी को ऋषि दयानन्द के विचारों को पढ़कर लाभ उठाना चाहिये। गृहस्थ आश्रम की महत्ता का इससे अधिक उपयुक्त वर्णन कहीं देखने को नहीं मिलता। ऋषि दयानन्द जी को सादर नमन। ओ३म् शम्।

स्वामी–आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश सम्पादक–पंकज जायसवाल भगवानदीन आर्य भाष्कर प्रेस,
5–मीराबाई मार्ग, लखनऊ के लिए अस्थायी रूप में शुभम् आफ्सेट प्रिंटर्स, कैसरबाग, लखनऊ से मुद्रित एवं प्रकाशित
लेखों में वर्णित भाषा या भाव से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है–सम्पूर्ण विवादों का न्याय क्षेत्र लखनऊ न्यायालय होगा।